वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७

ISSN 2582-0656
9 772582 065005

विवेक ज्योति

वर्ष ६१ अंक ६
जून २०२३

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६१

अंक ६

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक

स्वामी अव्ययात्मानन्द

व्यवस्थापक

स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक

स्वामी पद्माक्षानन्द

आषाढ़, सम्वत् २०८०

जून, २०२३

अनुक्रमणिका

* मन की एकाग्रता को योग कहते हैं : विवेकानन्द ३१८
* माहेश की रथयात्रा और श्रीरामकृष्ण (स्वामी तन्निष्ठानन्द) ३२१
* अध्यात्म रामायण में भगवान श्रीराम की स्तुति (अरुण चूड़ीवाल) ३२४
* (बच्चों का आंगन) योग से बच्चों का सर्वांगीण विकास (श्रीमती मिताली सिंह) ३२७
* रामकृष्ण संघ : एक विहंगम दृष्टि (स्वामी पररूपानन्द) ३२८
* हे प्रभु, हमारा जिसमें मंगल हो वही करो ! (स्वामी सत्यरूपानन्द) ३३६
* (युवा प्रांगण) युवा-जीवन में सत्संग का प्रभाव (रीता घोष) ३३७
* योग के सभी आयामों की प्रकाशक है गीता (स्वामी गोविन्ददेव गिरि) ३४०
* श्रीरामकृष्ण का आकर्षण (स्वामी अलोकानन्द) ३४४
* (कविता) मैं गाऊँ रामकृष्ण का (ओमप्रकाश वर्मा) ३३९
* (कविता) ढाई आखर बानी (आनन्द तिवारी पौराणिक) ३३९
* (कविता) बस चरणों में ही रहने दो (प्रदीप चित्रांशी) ३५३

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) ३१७
पुरखों की थाती ३१७
सम्पादकीय ३१९
प्रश्नोपनिषद् ३२६
श्रीरामकृष्ण-गीता ३३९
सारगाछी की स्मृतियाँ ३४२
रामराज्य का स्वरूप ३४८
गीतातत्त्व-चिन्तन ३५१
साधुओं के पावन प्रसंग ३५४
समाचार और सूचनाएँ ३५७

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : **०९८२७१ ९७५३५** (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)

ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***

आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक) रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति १७/–	१६०/-	८००/-	१६००/-
विदेशों में (हवाई डाक से)	५० यू.एस. डॉलर	२५० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिये	२००/–	१०००/–	

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

इस आश्रम की स्थापना १९४८ ई. में श्रीरामकृष्ण आश्रम, रायगंज के नाम से की गयी थी। २०२० ई. में बेलूड़ मठ द्वारा अधिगृहित होकर इसका नाम रामकृष्ण मिशन, रायगंज हुआ। इस आश्रम के द्वारा विभिन्न आध्यात्मिक सेवाकार्यों के साथ-साथ दातव्य तथा होमियोपैथी चिकित्सा, बच्चों हेतु निःशुल्क कोचिंग सेन्टर, अन्य राहत कार्य किये जाते हैं।

जून माह के जयन्ती और त्यौहार

०४ जगन्नाथ पुरी रथयात्रा
४,२९ एकादशी

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से

लेखकों से निवेदन

सम्माननीय लेखको ! गौरवमयी भारतीय संस्कृति के संरक्षण और मानवता के सर्वांगीण विकास में राष्ट्र के सुचिन्तकों, मनीषियों और सुलेखकों का सदा अवर्णनीय योगदान रहा है। विश्वबन्धुत्व की संस्कृति की द्योतक भारतीय सभ्यता ऋषि-मुनियों के जीवन और लेखकों की महान लेखनी से संजीवित रही है। आपसे नम्र निवेदन है कि 'विवेक ज्योति' में अपने अमूल्य लेखों को भेजकर मानव-समाज को सर्वप्रकार से समुन्नत बनाने में सहयोग करें। विवेक ज्योति हेतु रचना भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें –

१. धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा मानव के नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित रचनाओं को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है।, **२.** रचना बहुत लम्बी न हो। पत्रिका के दो या अधिकतम चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर स्पष्ट सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुयी हो। आप अपनी रचना ई-मेल – vivekjyotirkmraipur@gmail.com से भी भेज सकते हैं।, **३.** लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें।, **४.** आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अतः उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें।, **५.** पत्रिका हेतु कवितायें छोटी, सारगर्भित और भावपूर्ण लिखें।, **६.** 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा। न्यायालय-क्षेत्र रायपुर (छ.ग.) होगा।, **७.** 'विवेक-ज्योति' में मौलिक और अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है, इसलिये अनुवाद न भेजें। यदि कोई विशिष्ट रचना इसके पहले किसी दूसरी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हो, तो उसका उल्लेख अवश्य करें।

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री अनुराग प्रसाद, गाजियाबाद (उ.प्र.)	६,५०१/-
,, ,,	१०,४०१/-

अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन निःशुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
७०५.	श्री एम.डी. प्रभु, रहाटे कॉलोनी, नागपुर (महा.)	शा. हाई स्कूल गोढ़ी, वाया-आरंग, जिला-रायपुर (छ.ग.)
७०६.	निशी बाला, विकासपुरी, नईदिल्ली	श्री जनार्दन शर्मा सिनियर सिटीजन सेन्टर, नई दिल्ली

रामकृष्ण मिशन

उकिलपारा, पो.- रायगंज, जिला-उत्तर दिनाजपुर, पश्चिम बंगाल - 733134

Mo. 7980000421, Email: raiganj@rkmm.org

सादर निवेदन

इस आश्रम की स्थापना 1948 में हुई। यहाँ की सभी गतिविधियाँ श्रीरामकृष्ण आश्रम, रायगंज के नाम से संचालित हो रही थीं। उसके बाद इस आश्रम को सितम्बर, 2020 में रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन बेलूड़ मठ द्वारा अधिगृहित किया गया। तत्पश्चात् सभी पारमार्थिक सेवाएँ 'रामकृष्ण मिशन, रायगंज' (रामकृष्ण मिशन बेलूड़ मठ की शाखा) के नाम से प्रदान की जा रही हैं।

आश्रम का निर्माण पूजनीय स्वामी गदाधरानन्द जी महाराज की प्रेरणा से स्थानीय भक्तों द्वारा किया गया। श्रद्धालु भक्तवृन्दों द्वारा प्रदत्त आर्थिक सहायता से 2016 में श्रीश्रीठाकुर का भव्य मन्दिर निर्मित हुआ। नवीन मन्दिर का उद्घाटन पूजनीय स्वामी शिवमयानन्द जी महाराज द्वारा किया गया। आश्रम की गतिविधियों को सुचारु रूप से संचालन हेतु निम्नलिखित योजनाओं की परिकल्पना की गयी है –

तत्काल आवश्यक अनुमानित लागत

1. साधु निवास तीन मंजिल निर्माण हेतु –	रु.1,50,30,880/-
2. कल्याण कोष (निशुल्क कोचिंग पारमार्थिक चिकित्सालय एवं राहत कार्य) –	रु. 50,00,000/-
3. आश्रम के दैनन्दिन कार्य-निर्वहण हेतु –	रु. 50,00,000/-
कुल	**रु. 2,50,30,880/-**

उपरोक्त कार्यों का संचालन आप सभी उदार हृदय भक्तों एवं आत्मीय जनों के सतत आर्थिक सहयोग द्वारा ही सम्भव है। अतः आप सबका सहयोग सराहनीय और अपेक्षित है।

आप सबकी मंगल कामना सहित।

बैंक विवरण : State Bank Of India : SME Raiganj Current A/c No. - 40307791451

IFC Code - SBIN0005523

सभी दानदाताओं से अनुरोध है कि अपना पूरा नाम, पिन नम्बर सहित, पैन नम्बर एवं मोबाइल नम्बर ई-मेल, व्हाट्सएप द्वारा सूचित करें। 80जी रसीद प्राप्त करने हेतु सभी राशि चेक/डीडी के माध्यम से भेजें।

आश्रम का पता है : रामकृष्ण मिशन, उकिलपारा, पोस्ट – रायगंज, जिला - उत्तर दिनाजपुर, पश्चिम बंगाल - 733134

भवदीय

सचिव

स्वामी परेशात्मानन्द

(सुदिप्त महाराज)

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!

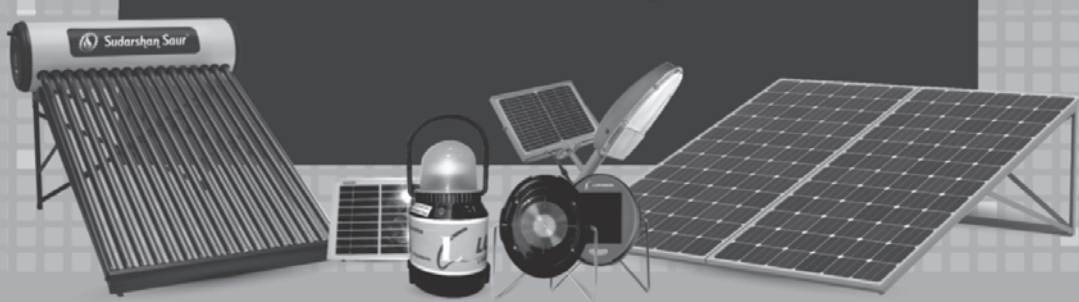

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखां संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com | Toll Free 1800 233 4545 | E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६१ जून २०२३ अंक ६

श्रीरामकृष्णस्तुतिः

गुणातीतचित्तं परज्ञानवित्तं
महायोग-साक्षात्कृत-ब्रह्मतत्त्वम्।
महिम्ना द्युलोक-प्रसर्पन्महत्वं
भजे रामकृष्णं महाशुद्धसत्त्वम्।।
वरेण्यं शरण्यं कृपाप्रावृषेण्यं
जगन्मातृहस्ताम्बुजस्पर्शधन्यम्।
महामोहनाशाभिलाषैः प्रपन्नं
भजे रामकृष्णं समाधिप्रपन्नम्।।

– जिनका चित्त गुणातीत अवस्था में प्रतिष्ठित है, सर्वश्रेष्ठ भगवद्ज्ञान ही जिनकी सम्पत्ति है, जिन्होंने महायोग के द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार किया है, जिनकी महिमा देवलोकव्यापी है, ऐसे परम शुद्ध सत्त्व रूप श्रीरामकृष्ण परमहंस का मैं भजन करता हूँ।

जो वरेण्य, शरणदाता, कृपावर्षक और जगन्माता के करकमल-स्पर्श से धन्य हैं, जो महामोहनाश के अभिलाषी हैं एवं समाधि में सदा प्रसन्न रहते हैं, उन्हीं श्रीरामकृष्ण परमहंस का मैं भजन करता हूँ।

पुरखों की थाती

दानेन पाणिर्न तु कंकणेन स्नानेन शुद्धिर्न तु चन्दनेन।
मानेन तृप्तिर्न तु भोजनेन ज्ञानेन मुक्तिर्न तु मण्डनेन।।७९६।।

– हाथों की शोभा कंगन पहनने से नहीं बल्कि दान से होती है, शरीर की शुद्धि चन्दन का लेप करने से नहीं बल्कि स्नान करने से होती है, मन की तृप्ति आहार-विहार से नहीं, बल्कि सम्मान से होती है और मोक्ष की प्राप्ति वेशभूषा धारण करने से नहीं, बल्कि ज्ञान से होती है।

दारिद्रनाशनं दानं शीलं दुर्गतिनाशनम्।
अज्ञानतानाशिनी प्रज्ञा भावना भयनाशिनी।।७९७।।

– दान करते रहने से अपनी दरिद्रता का नाश होता है, सुशील स्वभाव के द्वारा दुर्गति का नाश होता है, ज्ञान के द्वारा अज्ञानता का नाश होता है और श्रद्धा-भाव के द्वारा भय का नाश होता है।

दीर्घा वै जाग्रतो रात्रिः दीर्घं श्रान्तस्य योजनम्।
दीर्घो बालानां संसारः सद्धर्मं अविजानताम्।।७९८।।

– रात भर जागनेवाले को रात बड़ी लम्बी प्रतीत होती है, थके हुए व्यक्ति को एक योजन (चार मील) की दूरी भी काफी लम्बी लगती है और सच्चे धर्म को न जाननेवाले अज्ञानियों को संसार बड़ा दूभर प्रतीत होता है।

मन की एकाग्रता को योग कहते हैं : विवेकानन्द

समस्त मानव जाति का, समस्त धर्मों का चरम लक्ष्य एक ही है और वह है भगवान से पुनर्मिलन, अथवा दूसरे शब्दों में उस ईश्वरीय स्वरूप की प्राप्ति, जो प्रत्येक मनुष्य का प्रकृत स्वभाव है। परन्तु यद्यपि लक्ष्य एक ही है, तो भी लोगों के विभिन्न स्वभावों के अनुसार उसकी प्राप्ति के साधन भिन्न-भिन्न हो सकते हैं।

लक्ष्य और उसकी प्राप्ति के साधनों – इन दोनों को मिलाकर 'योग' कहा जाता है। 'योग' शब्द संस्कृत के उसी धातु से व्युत्पन्न हुआ है, जिससे अंग्रेजी शब्द 'योक' (Yoke) – जिसका अर्थ 'जोड़ना', अर्थात् अपने को उस परमात्मा से जोड़ना, जो कि हमारा प्रकृत स्वरूप है। इस प्रकार के योग अथवा मिलन के साधन कई हैं, पर उनमें मुख्य है कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग और ज्ञानयोग। (३/१६९)

जिस प्रकार हर एक विज्ञानशास्त्र के अपने अलग-अलग तरीके होते हैं, उसी प्रकार धर्म में भी है। धर्म के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के तरीकों या साधनों को हम योग कहते हैं। विभिन्न प्रकृतियों और स्वभावों के अनुसार योग के भी विभिन्न प्रकार हैं। उनके निम्नलिखित चार विभाग हैं –

(१) कर्मयोग – इसके अनुसार मनुष्य कर्म और कर्तव्य के द्वारा अपने ईश्वरीय स्वरूप की अनुभूति करता है।

(२) भक्तियोग – इसके अनुसार अपने ईश्वरीय स्वरूप की अनुभूति सगुण ईश्वर के प्रति भक्ति और प्रेम के द्वारा होती है।

(३) राजयोग – इसके अनुसार मनुष्य अपने ईश्वरीय स्वरूप की अनुभूति मनः संयम के द्वारा करता है।

(४) ज्ञानयोग – इसके अनुसार अपने ईश्वरीय स्वरूप की अनुभूति ज्ञान के द्वारा होती है।

ये सब एक ही केन्द्र – भगवान् – की ओर ले जाने वाले विभिन्न मार्ग हैं। (३/१६९-७०)

हमारे मतानुसार मन की समस्त शक्तियों को एकमुखी करना ही ज्ञान-लाभ का एकमात्र उपाय है। बहिर्विज्ञान में बाह्य विषयों पर मन को एकाग्र करना होता है और अन्तर्विज्ञान में मन की गति को आत्माभिमुखी करना पड़ता है। मन की इस एकाग्रता को ही हम योग कहते हैं।

योगी कहते हैं कि इस एकाग्रता शक्ति का फल अत्यन्त महान है। उनका कहना है कि मन की एकाग्रता के बल से संसार के सारे सत्य, बाह्य और अन्तर दोनों जगत् के सत्य – करामलकवत् प्रत्यक्ष हो जाते हैं।

योगी दावा करते हैं कि मनुष्य-देह में जितनी शक्तियाँ हैं, उनमें ओज सबसे उत्कृष्ट कोटि की शक्ति है। यह ओज मस्तिष्क में संचित रहता है। जिसके मस्तिष्क में ओज जितने अधिक परिमाण में रहता है, वह उतना ही अधिक बुद्धिमान और आध्यात्मिक बल से बली होता है। एक व्यक्ति बड़ी सुन्दर भाषा में सुन्दर भाव व्यक्त करता है, परन्तु लोग आकृष्ट नहीं होते और दूसरा व्यक्ति न सुन्दर भाषा बोल सकता है, न सुन्दर ढंग से भाव व्यक्त कर सकता है, परन्तु फिर भी लोग उसकी बात से मुग्ध हो जाते हैं। वह जो कुछ कार्य करता है, उसी में महाशक्ति का विकास देखा जाता है। ऐसी है ओज की शक्ति ! (१/८१)

सम्पादकीय

तपस्या की शक्ति और उसका उपयोग

तपस्या क्यों?

तप की महिमा लोक प्रथित है, वेद प्रतिपादित है, श्रुतिसम्मत और शास्त्रानुमोदित है। तप की महान शक्ति से देव, ऋषि और नर सभी अवगत हैं। तप तन को सबल, सहिष्णु, मन को शुद्ध, दृढ़ और बुद्धि को प्रखर बनाता है। तप से चित्तशुद्धि होती है। तप से आत्मज्ञान का मार्ग प्रशस्त होता है। महर्षि पतंजलि कहते हैं – **कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात् तपसः**[१] – तपस्या से अशुद्धि का क्षय हो जाने से तन और इन्द्रियों में शक्तियाँ आ जाती हैं। तप से अन्त:करण के कल्मष दूर होते हैं। तप से पाप का नाश होता है। तप चित्त के विकारों का नाश कर मानव के हृदय रूपी सिंहासन को भगवान के विराजमान होने के योग्य बनाता है। तप से हृदय का तमान्ध दूर होता है। तप से चित्त-दर्पण स्वच्छ होता है और ज्योतिर्मय आत्मा का प्रकाश विकीर्ण होने लगता है। तप से हृदयस्थ परमात्म-ज्योति प्रकाशित होकर अन्त:करण को प्रकाशित करती है, आलोकित करती है। तप से हृदय में विराजमान सच्चिदानन्द की अभिव्यक्ति होती है। तप से अन्त:स्थ परमात्मा का अनन्त ज्ञान-स्रोत प्रस्फुटित होता है। तप से ही नर नारायण की अनुभूति करता है। तप से मानव में देवत्व, दिव्यत्व आता है। अत: तप जीवन का प्रमुख और महत्त्वपूर्ण अंग है।

जीवन को उत्कृष्ट और धन्य बनाने और अपने प्रयोजन की सिद्धि हेतु तप सबको करना पड़ता है। श्रीमद्भागवत में भगवान विष्णु ब्रह्माजी से कहते हैं –

सृजामि तपसैवेदं ग्रसामि तपसा पुनः।
बिभर्मि तपसा विश्वं वीर्यं मे दुश्चरं तपः।।[२]

– तप की महिमा का प्रतिपादन करते हुये गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि तप से ही ब्रह्मा सृष्टि की रचना करते हैं। तप से ही विष्णु सम्पूर्ण संसार की रक्षा करते हैं। तप से भगवान शिव संहार करते हैं और तप से शेषनागजी पृथ्वी के भार को धारण करते हैं –

तपबल रचइ प्रपंचु बिधाता।
तपबल बिष्नु सकल जग त्राता।।
तपबल संभु करहिं संघारा।
तप बल सेषु धरइ महिभारा।।[३]

ऐसी तप की महिमा है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी तप के द्वारा अपना कार्य सिद्ध करते हैं।

तप कैसे करें?

श्रीमद्भगवद् गीता में भगवान श्रीकृष्ण कायिक, वाचिक और मानसिक तीन प्रकार के तप का विधान करते हैं –

देव-द्विज-गुरु-प्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।।
अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।।
मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते।।[४]

– देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानियों का पूजन, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा, ये शारीरिक तप कहे जाते हैं – जो उद्वेग न करनेवाला, प्रिय, हितकर और सत्य वाणी है तथा जो स्वाध्याय और नाम-जप का अभ्यास है, उसे वाणी का तप कहा जाता है – मन की प्रसन्नता, सौम्यता – शान्तभाव, मौन, आत्मनिग्रह, भाव की पवित्रता, ये सब मानसिक तप कहे जाते हैं।

इस प्रकार कायिक, वाचिक और मानसिक तप को भगवान श्रीकृष्ण ने हमारे समक्ष प्रस्तुत किया।

तपस्वी सावधान ! तपजनित शक्ति का कभी भी दुरुपयोग न करें

तप की महिमा का वर्णन करते समय तप की सकारात्मक उपयोगिता का वर्णन किया गया था। संसार में कहीं भी उत्कृष्टता और जीवन में दिव्यता प्राप्ति हेतु तप की आवश्यकता होती है। व्यक्ति के जीवन की सफलता उसके तप की ओर इंगित करती है। अत: साधक का उद्देश्य सर्वदा आत्मविकास, आत्मानुभूति और ईश्वर-दर्शन या परमात्मा का साक्षात्कार ही होना चाहिये। इसी से सभी प्रयोजन सिद्ध हो जाते हैं। किन्तु यदि साधक तपस्या की अवधि में सजग और विवेकी नहीं रहा, तो तपजनित प्राप्त

क्षुद्र सिद्धियों में ही उलझकर संसार में मान-यश प्राप्ति के चक्र में अपना अमूल्य जीवन गँवा देगा और अन्त में इस संसार से रिक्त हाथ पश्चात्ताप करते हुये चला जायेगा। कुछ तपस्वी तो अहंकार में आकर दूसरे का अनिष्ट कर देते हैं। इसलिये साधकों को बार-बार ऋषियों ने सावधान किया है। स्वामी विवेकानन्द ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक कर्मयोग में एक संन्यासी की घटना का उल्लेख किया है, जिसका उल्लेख यहाँ प्रासंगिक होगा – ''एक तरुण संन्यासी वन में गया। वहाँ उसने दीर्घकाल तक ध्यान-भजन तथा योगाभ्यास किया। अनेक वर्षों की कठिन तपस्या के बाद एक दिन जब वह एक वृक्ष के नीचे बैठा था, तो उसके ऊपर वृक्ष से कुछ सूखी पत्तियाँ आ गिरीं। उसने ऊपर दृष्टि उठायी, तो देखा कि एक कौआ और एक बगुला पेड़ पर लड़ रहे हैं। यह देखकर संन्यासी को बहुत क्रोध आया। उसने कहा, 'यह क्या ! तुम्हारा इतना साहस कि तुम ये सूखी पत्तियाँ मेरे सिर पर फेंको?' इन शब्दों के साथ संन्यासी की क्रुद्ध आँखों से आग की एक ज्वाला-सी निकली और वे बेचारी दोनों चिड़ियाँ जलकर भस्म हो गयीं। अपने में यह शक्ति देखकर वह संन्यासी बड़ा खुश हुआ। उसने सोचा, 'वाह, अब तो मैं दृष्टि मात्र से कौए-बगुले को भस्म कर सकता हूँ।' कुछ समय बाद वह भिक्षा के लिये एक गाँव को गया। गाँव में जाकर वह एक दरवाजे पर खड़ा हुआ और पुकारा – 'माँ कुछ भिक्षा मिले।' भीतर से आवाज आयी, 'थोड़ा रुको, मेरे बेटे !' संन्यासी ने मन में सोचा, 'अरे दुष्टा, तेरा इतना साहस कि तू मुझसे प्रतीक्षा कराये ! अभी तू मेरी शक्ति नहीं जानती !' संन्यासी ऐसा सोच ही रहा था कि भीतर से फिर एक आवाज आयी, 'बेटा, अपने को इतना बड़ा मत समझ। यहाँ न तो कोई कौआ है और न बगुला।''[५] यह कहानी तप से प्राप्त शक्ति का दुरुपयोग का उदाहरण है और ऐसा कृत्य लोक के लिये अहितकर है। राक्षस भी यज्ञ और तप करते हैं, किन्तु उनका उद्देश्य दिव्यास्त्र और दिव्यशक्ति पाकर शत्रु का विनाश करना होता है। उनका प्रयोजन अपने सम्मान, प्रतिष्ठा, प्रभुत्व और अहंकार-वर्धन करना होता है, जो उनके और मानवता के लिये विनाशकारी होता है। ऐसे तप को भगवान श्रीकृष्ण ने तामसी और राजसी कहा है –

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम्।।

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम्।।[६]

– जो तप मूढ़तापूर्वक स्वयं कष्ट सहकर दूसरों के अनिष्ट के लिये किया जाता है, वह तप तामसी कहा जाता है।

– जो तपस्या सत्कार, सम्मान और पूजा के लिये तथा अन्य किसी स्वार्थवश दम्भ से की जाती है, वह क्षणिक फलदायी तपस्या राजसी कही जाती है।

ऐसा तप तपस्वी को भव-बन्धनों में बाँधता है, ऐसा तप मुक्ति का द्वार नहीं खोलता। इसलिये तपस्वी को सदा सजग दृष्टि रखनी चाहिये, तप का उद्देश्य स्पष्ट रखना चाहिये।

तप का एकमात्र उद्देश्य ईश्वर-दर्शन

ध्रुव और नचिकेता भी तप करते हैं, किन्तु उनके तप का उद्देश्य आत्मकल्याण और लोककल्याण था, किसी दूसरे का अहित नहीं था। श्रीराम के द्वारा वन-गमन और विभिन्न स्थानों पर रहकर तपोमय जीवन लोककल्याण के लिये था। अनादि काल से ऋषियों की तपस्या आत्मसाक्षात्कार और लोककल्याण के लिये थी। यदि कोई व्यक्ति ईश्वरानुभूति कर लेता है, तो उससे सर्वाधिक लोक-कल्याण होता है। स्वामी विवेकानन्द का भारत-भ्रमण के दौरान विभिन्न स्थानों पर ध्यान, तप लोकहितार्थ था। श्रीरामकृष्ण की दक्षिणेश्वर में तपस्या लोक-कल्याण के लिये थी। अत: तपस्या का उद्देश्य आत्मानुभूति और लोककल्याण ही होना चाहिये, किसी भी प्रकार से चमत्कारिक शक्तियों को प्राप्त कर लोकप्रदर्शन नहीं। श्रीकृष्ण ने फलाकांक्षारहित होकर श्रद्धा से कायिक, वाचिक और मानसिक तप को सात्त्विक तप की संज्ञा दी है –

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते।।[७]

तप का उद्देश्य परमात्म-साक्षात्कार होने से तपस्वी का जीवन सुरक्षित रहता है। एकमात्र ईश्वर-दर्शन, परमात्मानुभूति से ही जीवन सार्थक, सुरक्षित और धन्य होता है। पग-पग, पल-पल तपस्वी के जीवन में संकट आते रहते हैं, बाधायें आती रहती हैं, जिससे परमात्मा के प्रति पूर्ण शरणागति से ही रक्षा होती है और साधक दृढ़ता से अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होकर लक्ष्य को प्राप्त करता है।

सन्दर्भ सूत्र – १. पतंजलि योगसूत्र २/४३ **२.** श्रीमद्भागवत २/९/२३ **३.** श्रीरामचरित-मानस, १/७२/३-४ **४.** श्रीमद्भगवद्गीता, अ.१७/१४-१६ **५.** विवेकानन्द साहित्य, ३/४३ **६.** श्रीमद्भगवद्गीता, अ.१७/१९-१८ **७.** वही १७/१७

रथयात्रा विशेष

माहेश की रथयात्रा और श्रीरामकृष्ण

स्वामी तन्निष्ठानन्द, नागपुर

जैसे संसार में पुरी की श्रीजगन्नाथ रथयात्रा प्रसिद्ध है, वैसे ही बंगाल में माहेश की रथयात्रा प्रसिद्ध है। माहेश की यह प्राचीन रथयात्रा करीब ६२१ साल से जारी है। जिस तरह ओडिशा के पुरी में हर साल भगवान जगन्नाथ की रथयात्रा का आयोजन होता है, उसी तरह पश्चिम बंगाल के हुगली जिले के श्रीरामपुर के करीब माहेश में भी रथयात्रा निकाली जाती है। श्रीरामपुर के दक्षिण में है वल्लभपुर और उसके दक्षिण में है माहेश। माहेश की रथयात्रा विश्व की दूसरी सब से प्राचीन रथयात्रा है। यह रथयात्रा सन् १३९६ से निकाली जा रही है। माहेश रथयात्रा **माहेश जगन्नाथ मन्दिर** से निकलती है। श्रीरामकृष्ण यहाँ कई बार गये थे। यहाँ लगभग एक महीना मेला लगता है।

इस मन्दिर की एक पौराणिक कहानी है। ऐसा कहते हैं कि १४वीं सदी में बंगाल के दुर्वानन्द ब्रह्मचारी नामक एक साधक थे। वे एक बार तीर्थयात्रा पर जगन्नाथ पुरी गये। उनकी इच्छा हुई कि स्वयं भोग बनाकर भगवान जगन्नाथ को लगाया जाये, पर मन्दिर के पुजारियों ने उन्हें वैसा करने नहीं दिया। वे निराश हो गये और मृत्यु तक उपवास करने का संकल्प ले लिया। तीसरे दिने उन्हें भगवान ने स्वप्न में दर्शन देकर कहा, 'दुर्वानन्द, तुम बंगाल वापस जाओ। भागीरथी के तट पर वहाँ माहेश नामक ग्राम है। वहाँ मैं तुम्हें दारु-ब्रह्म

(नीम की लकड़ी) भेज दूँगा। उससे तुम मेरी, बलराम तथा सुभद्रा की मूर्तियाँ बनवाना। मैं तुम्हारे हाथों से बना भोग स्वीकारने के लिए आतुर हूँ।' दुर्वानन्द स्वप्नादेश के अनुसार

माहेश आये और साधना में रत हो गये। तब यहाँ जंगल था। उन्होंने वहाँ रहने योग्य स्थान बनाया। कुछ महीनों बाद एक भयानक बरसाती रात में गंगा नदी में विराट दारु-ब्रह्म (नीम की लकड़ी) दिखाई दिये। वे तुरन्त जल में कूद पड़े और उन्होंने वह लकड़ी बाहर निकाली। उन्हीं लकड़ी से उन्होंने भगवान जगन्नाथ, बलराम और सुभद्रा की मूर्तियाँ बनवायीं और उन्हें छोटी-सी झोपड़ी में स्थापित किया। अब वे भगवान को स्वयं भोग दे सकते थे। इस अद्भुत घटना के बाद छोटा-सा मन्दिर 'माहेश जगन्नाथ मन्दिर' के रूप में प्रसिद्ध हो गया।

एक कथा ऐसी भी है कि भगवान जगन्नाथपुरी से माहेश वहाँ की प्रसिद्ध मिहिदाना मिठाई (एक प्रकार की बूँदी) खाने जाते हैं। पेट भर वह मिठाई खाने के बाद उनके पास दुकानदार को देने के लिए पैसे नहीं थे, तब उन्होंने अपना बाज़ूबन्द (केयूर) गिरवी रखा। जब पुरी के पुजारियों ने देखा कि भगवान का एक बाज़ूबन्द नहीं है, तो वे क्षुब्ध हो गये। तब भगवान ने वह घटना बतायी। उसके बाद मन्दिर के लोग माहेश जाकर उसे वापस लाये। इस घटना का वर्णन प्रसिद्ध बंगाली 'बालाबन्ध पाला' नामक लोककथा में है। बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के 'राधारानी' नामक विख्यात उपन्यास में माहेश के रथयात्रा का सुन्दर वर्णन है। उपन्यास की छोटी अंधी नायिका मेले में गुम हो जाती है।

श्रीचैतन्य महाप्रभु संन्यास ग्रहण करने के उपरान्त पुरी

के लिए निकल पड़े। रास्ते में वे माहेश आये। वहाँ के जगन्नाथ मन्दिर के दर्शन करते ही वे गम्भीर समाधि में लीन हो गये। उस जगह की महिमा की साक्षात् अनुभूति कर उन्होंने माहेश को 'नव-नीलाचल' घोषित किया। जब दुर्वानन्द बूढ़े हो गये, तब उन्होंने चैतन्य महाप्रभु से मन्दिर की व्यवस्था का भार किसी दूसरे को सौंपने की विनती की। तब चैतन्य ने कमलाकर पिपलाई को मन्दिर की व्यवस्था का भार सौंपा। कमलाकर ने अपने जीवन-काल में ही माहेश में रथयात्रा आरम्भ की। आज भी उनके वंशज श्रीजगन्नाथजी की सेवा करते हैं।

वह पुराना मन्दिर तथा रथ आज अस्तित्व में नहीं है। नये मन्दिर को कलकत्ते के पाथुरीयाघाट के नयनचन्द मलिक ने सन् १७५५ में २०,००० रुपए खर्च कर बनवाया था। वह उड़िशा के रेखा देऊल पद्धति का एक साधारण मन्दिर है। पुराने जो भगवान के विग्रह हैं, वे रथयात्रा में नहीं ले जाते, पर भगवान के उत्सव-चल-विग्रह ले जाते हैं। रथयात्रा के पूर्व जिस तरह पुरी में स्नानयात्रा आदि होती है, वैसे ही माहेश में भी होती है। पुरी में भगवान के विग्रह कुछ साल बाद बदले जाते हैं, जिसे नवकलेवर कहते हैं, पर यहाँ वैसा नहीं होता। वही पुराने विग्रह आज भी पूजा में हैं। सन् १७९७ में श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य बलराम बसु के रिश्ते

में दादा कृष्णराम बसु ने एक बड़ा रथ दान में दिया था। सन् १८३५ में उनके पुत्र गुरुप्रसाद ने उस रथ का नवीनीकरण किया। कुछ साल बाद वह रथ जल गया। यह सिलसिला चलता रहा। अन्त में दीवान कृष्णचन्द्र बसु ने मार्टिन बर्न कंपनी द्वारा सन् १८८५ में धातु का रथ तैयार करवाया। वह रथ आज भी है। रथ ४ मंजिलवाला है, उसमें १२ पहिये और ९ शिखर हैं, वह ५० फीट ऊँचा है और उसका वजन १२५ टन है। रथ की पहली मंजिल पर चैतन्यलीला का वर्णन है। दूसरी ओर तीसरी मंजिल पर कृष्ण और राम लीला है। रथ के सामने ताम्र धातु के दो घोड़े लगाये जाते हैं। रथयात्रा के पहले दिन जगन्नाथजी को महाराजा के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है। ऊपरी मंजिल पर भगवान के उत्सव-चल-विग्रह रखे जाते हैं। ऐसा कहते हैं कि पुरी में रथ खींचना आरम्भ होते ही नीलकण्ठ पक्षी आकर इस रथ पर बैठता है, तभी पुजारी इस रथ को खींचने को कहते हैं। आजकल एक नीलकण्ठ पक्षी लाकर उसे रथ पर बैठाते हैं। उसके उड़ जाने पर रथयात्रा प्रारंभ होती है।

श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा देवी, स्वामी ब्रह्मानन्द, मास्टर महाशय, नाटककार गिरीशचन्द्र घोष आदि भक्त माहेश पधारे थे। माहेश बलराम बाबू के पूर्वजों का गाँव था। प्राय: हर साल श्रीरामकृष्ण इस उत्सव में भाग लेते थे, ऐसा श्री अक्षयकुमार सेन श्रीरामकृष्ण-पूँथी में लिखते हैं। एक बार (जुलाई, १८८५ उलटा-रथ उत्सव) श्रीरामकृष्ण नाव से माहेश पधारे, तब उनके साथ हरिपद, गोलाप-माँ और पुजारी ब्राह्मण यज्ञेश्वर आदि थे। मन्दिर के पासवाला कृष्णराम बसु का तीन मंजिला भवन उनके विश्राम के लिए आरक्षित था। (आज वह घर अस्तित्व में नही है।) उस दिन ठाकुर के गले का दर्द कुछ अधिक ही था। इसलिए वे खिचड़ी प्रसाद भी ग्रहण नही कर सके। जैसे ही भगवान जगन्नाथ वाद्यों की शोरगुल में रथ में विराजमान हुए ठाकुर भावाविष्ट हो गये। आवेग बढ़ता गया, शरीर डोलने लगा। वे भावावेश में पहली मंजिल के बरामदे में आये और फिर घर के बाहर आकर रथ के पास आये। उनके पीछे-पीछे भक्त भी आये। रथ को खींचने की रस्सी को पकड़ने के लिए वे भावावेश में भीड़ में घुसे। वे अनजाने में रथ के चक्के के सामने आ गये और समाधिस्थ हो गये। रथ खींचनेवाले भक्तों ने डरकर रस्सी छोड़ दी। क्या आश्चर्य है कि रथ रुक गया ! उस दिन ठाकुर का महाभाव भक्तों को मानो भगवान जगन्नाथ का दर्शन दे रहा था। उनकी बाह्य संज्ञा लोप हुई थी। लोगों ने उनके लिए रास्ता बनाया और उन्हें बाहर ले आये। भावावेश का थोड़ा उपशम होने पर भक्त उन्हें कमरे में ले आये। दक्षिणेश्वर लौटने पर उनके गले का दर्द बहुत बढ़ गया था। **स्वामी अद्भुतानन्द** (लाटू महाराज) के संस्मरण के अनुसार उलटे रथ के दिन माहेश जाने के लिए ठाकुर ने गिरीशचन्द्र घोष को नौका की व्यवस्था करने के लिए कहा था। लाटू उनके

साथ गये थे। आज उस मन्दिर में श्रीरामकृष्ण का एक फोटो रखा हुआ है, जिसकी प्रतिदिन पूजा होती है।

एक वर्ष रथयात्रा के समय **श्रीमाँ सारदा देवी** गणेन्द्रनाथ के साथ माहेश गयीं। प्राय: सारा दिन वहाँ रहकर उन्होंने प्रसाद-ग्रहण किया और रथ-रज्जु को पकड़कर रथ खींचा। फिर वे कलकत्ता लौट आयीं। इस दिन राधू और निताईबाबू की माँ श्रीमाँ के साथ मोटरगाड़ी में तथा **योगीन-माँ** इत्यादि स्त्रीभक्त नौका द्वारा माहेश गयी थीं। माताजी मोटर गाड़ी से जाने के लिए सहमत नहीं होतीं, क्योंकि एक बार माहेश का रथ देखने जाते समय उनकी मोटर के नीचे एक कुत्ता दब गया था। परन्तु भक्तों के आग्रह पर बारम्बार ठाकुर को प्रणाम करने के बाद वे गाड़ी में बैठने के लिए तैयार हो गयीं।

६ जुलाई, १९१३ के दिन **स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज** ४०-५० भक्तों को लेकर माहेश गए तथा रथयात्रा का दर्शन किया। साथ में संकीर्तन दल के रहने तथा महाराज की उपस्थिति से आनन्दमय परिवेश हो गया।

स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज

एक बार गंगाजी के उस पार 'माहेश' की रथयात्रा के दर्शनार्थ जाकर **गोपाल की माँ** को सर्वभूतों में श्रीगोपाल का दर्शन प्राप्त हुआ था तथा उससे वे अत्यन्त प्रसन्न हुई थीं। वे कहा करती थीं कि उस समय रथ, रथ पर विराजित श्रीजगन्नाथ देव तथा जो व्यक्ति रथ खींच रहे थे एवं अपार जनसमूहादि सब कुछ में उन्हें गोपाल दिखाई दिये, भेद केवल इतना ही था कि श्रीगोपाल भिन्न-भिन्न रूप धारण किये हुए थे। इस प्रकार श्रीभगवान के विश्वरूप का दर्शनाभास प्राप्त कर प्रेमोन्मत्त हो जाने के कारण उस समय उनकी बाह्य-चेतना नहीं रही। अपनी एक महिला-मित्र के निकट स्वयं इस बात को कहते समय उन्होंने कहा था, ''उस समय मुझे अपना होश तक नहीं था, नाच-कूद में मैं मस्त हो रही थी।''

महेन्द्रनाथ गुप्त (मास्टर महाशय) जब चार वर्ष के थे, तब उन्हें गंगा के उस पारवाले माहेश की रथयात्रा देखने ले गये थे। रास्ते में वे दक्षिणेश्वर के भवतारिणी के मन्दिर में भी गये थे, जो सद्य: बना था। परवर्ती काल में वे भी माहेश गये थे, ठाकुर के पीछे-पीछे। उन्होंने कहा था, 'ठाकुर माहेश की रथयात्रा देखने नौका से गये थे। हम लोग हावड़ा स्टेशन से रेल द्वारा गये थे। भक्तलोग उनको ढूँढ़ रहे थे। क्या आश्चर्य ! वे रथ खींच रहे थे। रथ खींचने का अर्थ है – मैं ईश्वर का दास हूँ, इस भाव को व्यक्त करना। शास्त्र में है, **'रथे तु वामनं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते।'** इसका अर्थ है इस देह रूपी रथ में ईश्वर के दर्शन करना। अर्थात् इस मनुष्य देह में उसका लाभ कर लेना। यह तो सब के लिए सहज नहीं है। इसलिए लकड़ी के रथ में लकड़ी के ईश्वर-विग्रहों में भगवान को देखना होता है। लोककल्याण के लिए महापुरुषों ने यह सरल मार्ग बतलाया है। महापुरुषों का अनुसरण करना चाहिये। जाकर फल-फूलों से पूजा करनी होती है, रथ खींचना होता है,

साष्टांग प्रणाम और भजनों की ताल पर नृत्य करना होता है। ठाकुर ने यह सब किया था। कृष्ण बसु के घर में ही ठाकुर रुके थे। वे बलरामबाबू के सम्बन्धी हैं। उनका ही वह मन्दिर है। ठाकुर गये थे, तो भक्तों को भी जाना चाहिये। यह सब करने से ईश्वर के प्रति भक्ति व प्रेम उत्पन्न होता है। तभी शान्ति मिलेगी, तभी सुख मिलेगा। ○○○

अध्यात्म रामायण में भगवान श्रीराम की स्तुति

संकलन – अरुण चूड़ीवाल, कोलकाता

आरक्तोपान्तनेत्रः शरदलितवपुः सूर्यकोटिप्रकाशो
वीरश्रीबन्धुराङ्गस्त्रिदशपतिनुतः पातु मां वीररामः।।११.८८।।

आँखों में लाली है, उनका शरीर करोड़ों सूर्य के समान चमक रहा है और उस शरीर में बाण की चोट जहाँ-तहाँ लगी है। वीर-लक्ष्मी से, वीर-सौन्दर्य से उनके एक-एक अंग अत्यन्त सुन्दर हो रहे हैं और त्रिदशपति इन्द्र आकर उनके चरणों में प्रणाम कर रहे हैं। ऐसे वीर राम हमारी रक्षा करें।

'अध्यात्म रामायण' के रचयिता वेदव्यास जी द्वारा रावण-वध के पश्चात् भगवान श्रीराम का वर्णन किया गया है। अध्यात्म रामायण में सत्-चित्-आनन्द तीनों का घनीभूत रूप में वर्णन है। यह अध्यात्म राम-गंगा शंकररूपी पर्वत से निकली है और रामरूपी समुद्र में मिलती है। वाल्मीकिजी ने रामायण, योगवासिष्ठ एवं आनन्द रामायण की रचना की थी। व्यासजी ने इस ग्रन्थ में विभिन्न पात्रों से भगवान का स्तवन करवाया है। अध्यात्म रामायण में भगवान श्रीराम का स्तवन अनेक बार किया गया है। इन स्तवनों में पात्र को बोध रहता है कि सर्वव्यापी परमात्मा ही मानवावतार में हैं। यहाँ कतिपय विशिष्ट स्तवनों का उल्लेख है। स्तवन से भगवान शब्द पर चढ़कर आते हैं और पहले कान में प्रवेश करते हैं, फिर हृदय में स्थिर हो जाते हैं। भगवान के प्रकट होने पर माता कौशल्या अपनी स्तुति का समापन करती हैं।

दर्शयस्व महानन्दबालभावं सुकोमलम्।
ललितालिङ्गनालापैस्तरिष्याम्युत्कटं तमः।।१.३.२९।।

आप इस अलौकिक रूप को समेट लीजिए और महानन्द बालभाव का दर्शन करा दीजिये। मैं सुकुमार बालक भाव को देखना चाहती हूँ। तुम्हारा मीठा-मीठा, प्यारा-प्यारा आलिंगन करके छाती से लगाकर, तुमसे मीठी-मीठी बातें करके मैं उसमें ऐसी मगन हो जाऊँगी कि फिर संसार-सागर में डूबने का, संसार के अन्धकार में भटकने का कोई अवकाश ही नहीं रहेगा।

अहिल्या ने स्तवन करते हुये कहा –

अहो कृतार्थास्मि जगन्निवास ते
पादाब्जसंलग्नरजः कणादहम्।
स्पृशामि यत्पद्मजशङ्करादिभि-
र्विमृग्यते रन्धितमानसैः सदा।।
अहो विचित्रं तव राम चेष्टितं
मनुष्यभावेन विमोहितं जगत्।
चलस्यजस्रं चरणादिवर्जितः
सम्पूर्णआनन्दमयोऽतिमायिकः।।१.५.४३-४४।

हे जगन्निवास! आश्चर्य है! आश्चर्य!! मैं कृतार्थ हो गयी, आपके चरण-कमल-रज का एक कण मुझसे स्पर्श हो गया। शंकर, ब्रह्मादि के लिए भी जो दुर्लभ है, बड़े-बड़े महात्मा लोग जिसको ढूँढते रहते हैं, उन चरणों की रज मुझे प्राप्त हुई। हे राम ! तुम्हारी लीला आश्चर्यजनक है। तुम मनुष्य बनकर सृष्टि को मोहित कर रहे हो, चरणादि से रहित होकर भी चलते हो और आनन्दमय होकर भी माया फैलाते हो। आपके पद-पंकज-पराग से पवित्रगात्रा-भागीरथी गंगाजी शंकर-ब्रह्मादि को पवित्र करती हैं, वही आप आकर हमारी आँख के सामने खड़े हैं।

नारदजी स्तुति करते हैं –

ब्रह्मा त्वं जानकी वाणी सूर्यस्त्वं जानकी प्रभा।।२.१.१३।।
भगवान शशाङ्कः सीता तु रोहिणी शुभलक्षणा।
शुक्रस्त्वमेव पौलोमी सीता स्वाहानलो भवान्।।२.१.१४।।
यमस्त्वं कालरूपश्च सीता संयमिनी प्रभो।
निर्ऋतिस्त्वं जगन्नाथ तामसी जानकी शुभा।।२.१.१५।।

– तुम ब्रह्मा हो, जानकी वाणी हैं, तुम सूर्य हो, जानकी प्रभा हैं, तुम चन्द्रमा हो, सीता रोहिणी हैं, तुम इन्द्र हो, सीता पौलोमी (शची) हैं, तुम अग्नि हो, सीता स्वाहा हैं, तुम यम-काल रूप और सीता संयमिनी हैं, तुम निर्ऋति हो और सीता तामसी हैं।

इसका अर्थ है कि रोजगुणी, तमोगुणी, सत्त्वगुणी, जो कुछ भी सृष्टि में है, वह सब सीता-राम का स्वरूप है।

विराध द्वारा स्तवन –

कथामृतं पातु करद्वयं ते पादारविन्दार्चनमेव कुर्यात्।
शिरश्च ते पादयुगप्रणामं करोतु नित्यं भवदीयमेवम्।।३.१.४०।।

मेरी वाणी सदा तुम्हारे नाम का संकीर्तन करे, मेरे कान केवल आपके कथामृत का पान करें। हाथ आपके चरणों की पूजा करें। सिर चरणयुगलों में प्रणाम करे। इस प्रकार मेरा सारा जीवन व्यतीत होवे।

सुतीक्ष्ण द्वारा स्तवन –

त्वन्मन्त्रजाप्यहमनन्तगुणाप्रमेय
सीतापते शिवविरिञ्चिसमाश्रिताङ्घ्रे।
संसारसिन्धुतरणामलपोतपाद
रामाभिराम सततं तव दासदासः।।३.२.२७।।

मैं तो आपके मन्त्र का जप करता हूँ महाराज ! आपके गुण अनन्त हैं, आप सीतापति और आपके चरणारविन्द शिव-विरंचि के आश्रय हैं। जो आपके चरण कमल का आश्रय लेता है, वह संसार-सागर से पार हो जाता है। हे रामाभिराम ! हम तो आपके दासों के दास हैं।

अगस्त्य द्वारा स्तवन –

सदा मे सीतया सार्धं हृदये वस राघव गच्छत-
स्तिष्ठतो वापि स्मृतिः स्यान्मे सदा त्वयि।।३.३.४४।।

सीता-लक्ष्मण सहित अब हमारे हृदय में रहो। मैं चाहे चलता रहूँ, चाहे खड़ा रहूँ, चाहे किसी भी अवस्था में रहूँ, मेरी स्मृति तो तुम में ही लगी रहे।

जटायु द्वारा स्तवन –

अगणितगुणमप्रमेयमाद्यं
सकलजगत्स्थितिसंयमादिहेतुम्।
उपरमपरमं परात्मभूतं
सततमहं प्रणतोऽस्मि रामचन्द्रम्।।३.८.४४।।

आपके गुण अगणित हैं, किसी प्रमाण के विषय नहीं हैं। सब प्रमाणों के आदि आत्मा आप ही हैं। सृष्टि का अन्त भी आत्मा ही है, सृष्टि का मध्य भी आत्मा ही है। यही सृष्टि को आरम्भ में, मध्य में और अन्त में भी प्रकाशित करता है।

गिरिशगिरिसुतामनोनिवासं
गिरिवरधारिणमीहिताभिरामम्।
सुरवरदनुजेन्द्रसेविताङ्घ्रिं
सुरवरदं रघुनायकं प्रपद्ये।।३.८.४९।।

गौरी के मन में रहते हैं, गिरीश के मन में रहते हैं, जो उनका भक्त हैं, उसके लिए बड़े सुन्दर हैं और देवता-दैत्य सब उनके चरणारविन्द की सेवा करते हैं, ऐसे जो रघुनायक हैं, उनकी हम शरण लेते हैं।

शापमुक्त कबन्ध (गन्धर्व रूप में) द्वारा स्तवन –

धनुर्बाणधरं श्यामं जटावल्कलभूषितम्।
अपीच्यवयसं सीतां विचिन्वन्तं सलक्ष्मणम्।।३.९.४९।।
इदमेव सदा मे स्यान्मानसे रघुनन्दन।
सर्वज्ञः शङ्करः साक्षात्पार्वत्या सहितः सदा।।३.९.५०।।
त्वद्रूपमेवं सततं ध्यायन्नास्ते रघूत्तम।
मुमूर्षूणां तदा काश्यां तारकं ब्रह्मवाचकम्।।३.९.५१।।

– आकाश के समान साँवला – नीला स्वरूप, धनुष-बाण धारण किये हुए, सिर पर जटा और शरीर पर वल्कल, बड़ी सुन्दर अवस्था और ऐसे राम लक्ष्मण के साथ सीता को ढूँढ़ रहे हैं। यह ढूँढ़नेवाला रूप ही तो शंकर जी के मन में रहता है। इसी को तो वह हमेशा देखते रहते हैं। इसी का शंकरजी काशी में उपदेश करते हैं। इसलिए हे जानकीनाथ! तुम्हीं परमात्मा हो, जो लोग माया से मूढ़ हैं, वह तुमको तत्त्वतः नहीं जानते हैं।

नमस्ते राम राजेन्द्र नमः सीतामनोरम।
नमस्ते चण्डकोदण्ड नमस्ते भक्तवत्सल।।३.३.१७।।

हे राजेन्द्र राम ! तुम्हें नमस्कार है, हे सीता मनोरम ! तुम्हें नमस्कार है। हे चण्डकोदण्ड ! तुम्हें नमस्कार है। हे भक्तवत्सल ! तुम्हें नमस्कार है।

विभीषण द्वारा स्तवन –

नमोऽनन्ताय शान्ताय रामायामिततेजसे।
सुग्रीवमित्राय च ते रघूणां पतये नमः।।६.३.१८।।
जगदुत्पत्तिनाशानां कारणाय महात्मने।
त्रैलोक्यगुरवेऽनादिगृहस्थाय नमो नमः।।६.३.१९।।

– अनन्त, शान्त, अमित तेजस्वी राम को नमस्कार है। सुग्रीव के मित्र, रघुपति को नमस्कार है। आप ही जगत् की उत्पत्ति और स्थिति करनेवाले, त्रैलोक्य के गुरु हैं, अनादि गृहस्थ आप ही हैं।

धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि कृतकार्योऽस्मि राघव।
त्वत्पाददर्शनादेव विमुक्तोऽस्मि न संशयः।।६.३.३४।।
नास्ति मत्सदृशो धन्यो नास्ति मत्सदृशः शुचिः।
नास्ति मत्सदृशो लोके राम त्वन्मूर्तिदर्शनात्।।६.३.३५।।

– 'मैं धन्य हूँ महाराज ! कृतकृत्य हूँ और मेरे सब कार्य पूरे हो गये। तुम्हारे चरणों का दर्शन हुआ, मैं तो मुक्त हो गया। मेरे सदृश कोई धन्य नहीं है, मेरे सदृश कोई पवित्र नहीं है। धन्यता की पराकाष्ठा है रामकी प्राप्ति, शुचिता की पराकाष्ठा है राम की प्राप्ति ! आपका दर्शन हो जाने से मेरे सदृश संसार में अब अन्य कोई नहीं है।

उपरोक्त विभिन्न स्तवनों के अंश दिये गये हैं। सम्पूर्ण अध्यात्म रामायण भक्ति एवं अध्यात्म का संगम है। भगवान के स्तवनों का नित्य पाठ करने से भगवद्-भक्ति वर्धित होती है। ○○○

प्रश्नोपनिषद् (३६)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

स यथा सोम्य वयांसि वासोवृक्षं संप्रतिष्ठन्ते एवं ह वै तत्सर्वं पर आत्मनि संप्रतिष्ठते।।४/७।।

अन्वयार्थ – सोम्य (हे सौम्य), स: (वह दृष्टान्त इस प्रकार है) – यथा (जैसे) वयांसि (पक्षीगण) वासो-वृक्षम् (अपने निवास-वृक्ष पर) सम्प्रतिष्ठन्ते (भलीभाँति आश्रय ले लेते हैं), एवम् ह वा (उसी प्रकार) तत् सर्वम् (सभी प्राणी) परे आत्मनि (परम आत्मा में) सम्प्रतिष्ठते (आश्रय ले लेते हैं)।

भावार्थ – हे सौम्य (सुदर्शन), वह दृष्टान्त इस प्रकार है – जैसे पक्षीगण अपने निवास-वृक्ष पर भलीभाँति आश्रय लेते हैं, उसी प्रकार सभी प्राणी उस परम आत्मा में आश्रय ले लेते हैं ।

भाष्य – स दृष्टान्तो यथा येन प्रकरेण सोम्य प्रियदर्शन वयांसि पक्षिणो वासार्थं वृक्षं वासोवृक्षं प्रति संप्रतिष्ठन्ते गच्छन्ति। एवं यथा दृष्टान्तो ह वै तत् वक्ष्यमाणं सर्वं पर आत्मनि अक्षरे संप्रतिष्ठते ।।७।।

हे प्रियदर्शन, वह दृष्टान्त इस प्रकार है – जैसे पक्षीगण, निवास हेतु वृक्ष की ओर चले जाते हैं, इस दृष्टान्त के समान वैसे ही, सारा दृश्यमान जगत् (सब कुछ) उस अक्षर परब्रह्म में स्थित होने के लिए अग्रसर होता है ।।७।।

भाष्य – किं तत् सर्वम् –

वह सब कुछ क्या है?

पृथिवी च पृथिवीमात्रा चापश्चापोमात्रा च तेजश्च तेजोमात्रा च वायुश्च वायुमात्रा चाकाशश्चाकाशमात्रा च चक्षुश्च द्रष्टव्यं च श्रोत्रं च श्रोत्रव्यं च घ्राणं च घ्रातव्यं च रसश्च रसयितव्यं च त्वक्च स्पर्शयितव्यं च वाक्च वक्तव्यं च हस्तौ चादातव्यं चोपस्थश्चानन्दयितव्यं च पायुश्च विसर्जयितव्यं च पादौ च गन्तव्यं च मनश्च मन्तव्यं च बुद्धिश्च बोद्धव्यं चाहङ्कारश्चाहङ्कर्तव्यं च चित्तं च चेतयितव्यं च तेजश्च विद्योतयितव्यं च प्राणश्च विधारयितव्यं च।।४/८।।

अन्वयार्थ – पृथिवी च, पृथिवीमात्रा च (पृथिवी और उसकी गन्ध-तन्मात्रा) आप: च आपोमात्रा च (जल और उसकी रस-तन्मात्रा) तेज: च तेजोमात्रा च (तेज और उसकी रूप-तन्मात्रा) वायु: च वायुमात्रा च (वायु और उसकी स्पर्श-तन्मात्रा) आकाश: च आकाशमात्रा च (आकाश और उसकी शब्द-तन्मात्रा) चक्षु: च द्रष्टव्यं च (नेत्र और उसका विषय रूप) श्रोत्रं च श्रोतव्यं च (श्रोत्र और उसका विषय शब्द) घ्राणम् च घ्रातव्यम् च (नासिका और उसका विषय गन्ध) रस: च रसयितव्यम् च (जिह्वा और उसका विषय रस) त्वक् च स्पर्शयितव्यम् च (त्वचा और उसका विषय स्पर्श) वाक् च वक्तव्यम् च (वाणी और उसका विषय वक्तव्य) हस्तौ च आदातव्यम् च (दोनों हाथ और उनके द्वारा ग्रहणीय वस्तु) उपस्थ: च आनन्दयितव्यम् च (जननेन्द्रिय और उसका विषय-भोग) पायु: च विसर्जयितव्यम् च (गुदा और उसके द्वारा विसर्जनीय मल-मूत्र) पादौ च गन्तव्यम् च (दोनों पाँव और उनके गन्तव्य स्थान) मन: च मन्तव्यम् च (मन और मननीय विषय) बुद्धि: च बोधव्यम् च (बुद्धि और ज्ञातव्य विषय) अहंकार: च अहंकर्तव्यम् च (अहंकार और उसका विषय) चित्तम् च चेतयितव्यम् च (चित्त या स्मृति और स्मरणीय विषय) तेज: च विद्योतयितव्यम् च (तेज या ज्ञान और उसके द्वारा प्रकाश्य विषय) प्राण: च विधारयितव्यम् च (प्राण और उसके धारण-योग्य विषय) ।।

भावार्थ – पृथिवी और उसकी गन्ध-तन्मात्रा, जल और उसकी रस-तन्मात्रा, तेज और उसकी रूप-तन्मात्रा, वायु और उसकी स्पर्श-तन्मात्रा, आकाश और उसकी शब्द-तन्मात्रा, नेत्र और उसका विषय – रूप, श्रोत्र और उसका विषय – शब्द, नासिका और उसका विषय – गन्ध, जिह्वा और उसका विषय – रस, त्वचा और उसका विषय – स्पर्श, वाणी और उसका वक्तव्य, दोनों हाथ और उनके द्वारा

शेष भाग पृष्ठ ३५० पर

अन्तर्राष्ट्रिय योग दिवस विशेष

योग से बच्चों का सर्वांगीण विकास

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

योगेने चित्तस्य पदेन वाचां, मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां, पतंजलिः प्रांजलिरानतोऽस्मि।।

योग शब्द का अर्थ है जोड़ना। वर्तमान काल में यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि यह सारी सृष्टि केवल एक ऊर्जा है। अगर सरल ढंग से समझे, तो जो साँस हम छोड़ रहे हैं, वह साँस पेड़ अपने अन्दर ले रहे हैं और जो साँस पेड़ छोड़ रहे हैं, उसे हम अपने अन्दर ले रहे हैं। इसका अर्थ है कि हम एक दूसरे से जुड़े हुए हैं।

योग का इतिहास – योग के इतिहास को यदि हम देखें, तो योगविद्या हजारों वर्ष प्राचीन है। श्रुति परम्परा के अनुसार भगवान शिव योग विद्या के प्रथम आदिगुरु, योगी या आदियोगी हैं। हजारों-हजार वर्ष पूर्व हिमालय में कांति सरोवर के किनारे आदियोगी ने योग का ज्ञान सप्त-ऋषियों को दिया था। इन सप्त-ऋषियों ने इस योगविद्या को अलग-अलग स्थानों में प्रसारित किया। यह भारत भूमि ही है, जहाँ योगविद्या सम्पूर्ण रूप से अभिव्यक्त हुई।

योग से मनुष्य की भावना और विचारों की शुद्धि होना आरम्भ होता है और मस्तिष्क से अवसाद, चिन्ता, नकारात्मक विचार पर नियंत्रण करना सम्भव हो जाता है। योग मनुष्य को अध्यात्म से जोड़ता है तथा आत्मा और परमात्मा का मिलन कराता है, जिसमें मनुष्य को परमानन्द की प्राप्ति होती है।

बच्चों के लिए योग से लाभ – बच्चो आप योग करने से कई रोगों से बचे रहते हैं। नियमित योगाभ्यास से स्वास्थ्य को कई लाभ होते हैं। योग न केवल बड़ों, बल्कि बच्चों के पूर्ण स्वास्थ्य के लिये बहुत आवश्यक होता है। बच्चे यदि १०-१५ मिनट भी योग करें, तो रोग प्रतिरोधक क्षमता मजबूत हो सकती है, शरीर में लचीलापन आएगा, माँसपेशियों में मजबूती आएगी तथा शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक रूप से पूर्ण विकास करने में सहायता मिलेगी। नेत्र की क्षमता बढ़ाने, स्मरणशक्ति की वृद्धि करने में योग सहायता कर सकता है। इससे बच्चे अपने अध्ययन में भी बेहतर कर विभिन्न कार्यो में कुशल बन सकते हैं।

अमेरिका में योग पर एक बहुत बड़ा शोध किया गया। इस शोध में कई विस्मित करने वाले परिणाम सामने आये। यह शोध बच्चों पर किया गया था। शोधकर्ताओं ने ३२ छात्रों के लिए एक कार्यक्रम का आयोजन किया, जिसमें बच्चों को परामर्श तथा अन्य गतिविधियों के कार्यक्रम सम्मिलित थे। उन्होंने लगातार ८ सप्ताह तक ऐसा ही किया। इस कार्यक्रम में उन्होंने योग के कई व्यायाम को सम्मिलित किया। ओन्ली माई हेल्थ डॉट कॉम में छपे एक समाचार के अनुसार यदि बच्चे नियमित रूप से योग करने का अभ्यास आरम्भ कर दें, तो उनमें बहुत तेजी से शारीरिक, भावनात्मक और मानसिक विकास होने में मदद मिलती है। व्यक्तित्व में भी सुधार होता है, जिससे बच्चे सकारात्मक और आनन्दमय जीवन व्यतीत कर सकते हैं। योग से आत्मविश्वास की वृद्धि होगी और बच्चे अपने अन्दर की क्षमताओं को आसानी से पहचान सकेंगे। योग करने से पहले किसी विशेषज्ञ की सलाह भी ले लें।

वर्तमान में योग गुरुओं का योगदान – वर्तमान में भी हमारे ऋषि परम्परा को आगे बढ़ाने तथा योग को घर-घर तक पहुँचाने में स्वामी सत्यानन्द जी (मुंगेर आश्रम), योग गुरु स्वामी रामदेव जी, बी.के.एस.अयंगर जी (पद्मविभूषण), श्रीश्री रविशंकर जी आदि बहुत सारे गुरुओं का योगदान रहा है। योगगुरु जगह-जगह स्वयं जाकर योग शिविरों का आयोजन करते है, ताकि बच्चों और बड़ों को योग और अच्छे खान-पान के साथ पूर्ण स्वास्थ्य का लाभ मिल सके। ○○○

रामकृष्ण संघ : एक विहंगम दृष्टि

स्वामी पररूपानन्द, जयरामवाटी

(गतांक से आगे)

काशीपुर उद्यानवाटी – दक्षिणेश्वर में गृहस्थ एवं त्यागी युवा शिष्यों का आध्यात्मिक साधना के विषय में उपदेश एवं प्रशिक्षण श्रीरामकृष्ण ने दिया तो था, परन्तु विशेष रूप से त्यागी शिष्यों को भविष्य के महान कार्य के लिये आपस में निर्मल प्रेमपूर्ण सम्बन्ध में बाँधना भी आवश्यक था। यह कार्य श्रीरामकृष्ण ने काशीपुर स्थित उद्यानवाटी में किया, जहाँ उन्होंने ११ दिसम्बर, १८८५ ई. से १६ अगस्त, १८८६ ई. (रात्रि १.०६ बजे) तक आठ महीने अवस्थान किया था। गले के रोग के कारण उनका शरीर दुर्बल होता जा रहा था, परन्तु जो कार्य उन्होंने इससे पहले आरम्भ किया था, उसकी समाप्ति के लिये अपने कष्ट की उपेक्षा कर निरन्तर शिक्षा देने में लगे थे। दक्षिणेश्वर में रहते समय ही उन्होंने कहा था – ''जब अधिक लोग (मेरी दिव्य महिमा का विषय) जान जायेंगे और गुप्त रूप से उसकी चर्चा करने लगेंगे, तब (अपना शरीर दिखाकर) यह चोला नहीं रहेगा, माँ (जगन्माता) की इच्छा से यह टूट जायेगा'', ''(भक्तों में) कौन-कौन अन्तरंग और कौन-कौन बहिरंग हैं, यह उसी समय (उनकी शारीरिक अस्वस्थता के समय) निर्धारित हो जायेगा'' इत्यादि। भविष्यवाणी को सत्य होते यहाँ अन्तरंग भक्तों ने प्रत्यक्ष देखा था। उन्होंने नरेन्द्रनाथ के बारे में भविष्यवाणी की थी – ''माँ तुझे अपने काम के लिए संसार में खींच लायी हैं, तुझे अनुसरण करना ही होगा, तू जायेगा कहाँ?'' ये सब (बालक भक्त) मानो होमा पक्षी के बच्चों की तरह हैं। होमा पक्षी आकाश में बहुत ऊँचाई पर उड़कर अण्डे देता है। अण्डे तेजी से पृथ्वी की ओर गिरने लगते हैं। डर लगता है कि पृथ्वी पर गिरकर वे चूरचूर हो जायेंगे, परन्तु वैसा नहीं होता, भूमि छूने से पहले ही वे अण्डे फूट जाते हैं और बच्चे निकल आते हैं। ये बच्चे अपने पंख फैलाकर पुन: आकाश में उड़ जाते हैं। ये भक्त लोग भी इसी प्रकार गृहस्थी में फँसने के पहले ही उसे छोड़कर ईश्वर की ओर अग्रसर हो जायेंगे।'' इसी समय श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्रनाथ को उत्तराधिकारी के रूप में उपयुक्त उपदेश आदि देकर बालक-भक्तों का भार सौंपने और उनलोगों को परिचालित करने की शिक्षा भी दी थी। इस उद्यानवाटी में श्रीरामकृष्ण देव के जीवन के कई महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुए थे। काशीपुर के प्रसंग में एक अविस्मरणीय घटना का उल्लेख करना उपयुक्त होगा। यहाँ १ जनवरी, १८८६ ई. को घटी घटना ऐतिहासिक हो गई है, जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है – श्रीरामकृष्ण देव उस दिन कुछ स्वस्थ अनुभव कर रहे थे। अत: टहलने की इच्छा से दोपहर के लगभग तीन बजे वे बगीचे में आये और

वहाँ उपस्थित भक्तों में गिरीश घोष को सम्बोधित करते हुए कहा, ''गिरीश, तुम सबसे इतनी बातें (मेरे अवतार होने के बारे में) कहते रहते हो, तुमने (मेरे सम्बन्ध में) क्या देखा और क्या समझा है?'' गिरीशचन्द्र तनिक भी विचलित न होकर उनके श्रीचरणों के सामने घुटने टेककर ऊर्ध्वमुख हो हाथ जोड़कर गद्‌गद स्वर से बोल उठे, ''व्यास-वाल्मीकि जिनकी महिमा नहीं गा सके, मेरे जैसा क्षुद्र व्यक्ति उनके सम्बन्ध में क्या कह सकता है।'' गिरीश के हृदय का सरल विश्वास प्रत्येक शब्द में व्यक्त होने के कारण श्रीरामकृष्ण देव मुग्ध हुए और उसे निमित्त करके समीपस्थ भक्तों से बोले, ''तुम लोगों से क्या कहूँ, आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हें चैतन्य हो!'' भक्तों के प्रति प्रेम और करुणा से आप्लावित हो वे भावाविष्ट हो गये। इस दिव्य आशीर्वाणी से सम्मुख उपस्थित भक्तों का हृदय आनन्द से उद्वेलित हो गया। वे लोग ठाकुर को व्याधिग्रस्त अवस्था में स्पर्श न करने की बात भूलकर उनके चरणों की रज ग्रहण करने के लिये व्याकुल होकर जय-जयकार की ध्वनि करते हुए प्रणाम करने लगे। आज श्रीरामकृष्ण देव अर्धबाह्यदशा में समवेत प्रत्येक भक्त को स्पर्श करने लगे। भक्तगण में कोई-कोई मन्त्रमुग्ध हो कुछ भी कहने में असमर्थ केवल उन्हें देखते रहे। कोई ठाकुर की कृपा पाने के लिये चिल्ला-चिल्लाकर सब लोगों को बुलाने लगा और कोई मन्त्रोच्चारण करते हुए उनके ऊपर पुष्प चढ़ाने लगा। कुछ क्षण ऐसा होने के बाद श्रीरामकृष्ण को शान्त हुआ देखकर भक्तलोग भी प्रकृतिस्थ हुए। गृहस्थ-भक्त रामचन्द्र दत्त आदि किसी-किसी ने इस घटना का श्रीरामकृष्ण देव का 'कल्पतरु' होना कहकर उल्लेख किया था। परन्तु स्वामी सारदानन्द के अनुसार इस घटना को 'आत्मप्रकाशपूर्वक सबको अभयदान' कहना ही उपयुक्त होगा। क्योंकि ठाकुर ने बिना भेदभाव के अभय-आश्रय प्रदान कर अपने देवमानवत्व का परिचय दिया है। अस्तु, यह उद्यानभवन तब से उन दिनों की स्मृति संजोये हुए भक्तों को आनन्द प्रदान करता रहता है।

काशीपुर उद्यानवाटी में ठाकुर के दिशा-निर्देश, श्रीमाँ के स्नेह-प्रेम और नरेन्द्रनाथ द्वारा अनुप्राणित होकर युवा अन्तरंग शिष्यगण ने ठाकुर की सेवा में रत एक परिवार के सदस्य की तरह निवास किया था। मानो बाह्य जगत् से किसी का कोई सम्पर्क नहीं था और इस प्रकार ईश्वरेच्छा से उन युवा शिष्यों को भावी संन्यास जीवन का आस्वाद मिल रहा था। इस पवित्र वातावरण में गुरु की सेवा तथा आध्यात्मिक साधना करते हुए उन लोगों के संन्यास जीवन का आधार भी सशक्त होता जा रहा था। नरेन्द्रनाथ उन्हें ध्यान, भजन, अध्ययन, सत्संग, शास्त्रचर्चा आदि में निमग्न रखते। श्रीरामकृष्ण देव का शुद्ध नि:स्वार्थ प्रेम और नरेन्द्रनाथ का मित्रभाव तथा सुसंग के कारण त्यागी शिष्यगण परस्पर एक दूसरे को एक परिवार के सदस्य से भी अधिक अपना समझने लगे थे। मुख्य रूप से जिन बारह युवा शिष्यों ने पूर्णत: समर्पित होकर इस सेवाव्रत में भाग लेने का निश्चय किया था, उनके नाम हैं – नरेन्द्र, राखाल, बाबूराम, निरंजन, योगीन्द्र, लाटू, तारक, गोपालदादा, काली, शशी, शरत् और छोटा गोपाल। सारदाप्रसन्न, अपने पिता के उत्पीड़न के कारण बीच-बीच में रह पाते थे। हरि, तुलसी और गंगाधर घर में रहकर तपस्या करते थे और बीच-बीच में आते-जाते थे। (छोटा गोपाल को छोड़) इन सभी ने बाद में संन्यास ग्रहण किया था। ये सभी अन्तरंग भक्त गुरुपरायण तथा असाधारण कर्मकुशल थे। काशीपुर में रहते समय (१८८६ ई. में) बूढ़े गोपालदादा एक बार तीर्थ-दर्शन को गये थे। वहाँ से लौटकर उन्होंने गंगासागर मेले में जाने के लिए कलकत्ता आगत साधु-संन्यासियों को गेरुआ वस्त्र, रुद्राक्षमाला और

काशीपुर उद्यानवाटी

चन्दन दान करने की इच्छा ठाकुर से व्यक्त की। इस पर ठाकुर ने कहा कि यहाँ त्यागी युवा-शिष्य लोग ही तो ऊँचे स्तर के साधु हैं, ऐसा जानकर उन्हीं लोगों में बाँटना उत्तम होगा। गोपाल दादा ने सहमत होकर बारह गेरुए वस्त्र और रुद्राक्षमालाएँ लाकर ठाकुर को दिए, जिन्हें ठाकुर ने नरेन्द्र

आदि भक्तों में बाँट दिया। इनके नाम हैं – नरेन्द्र, राखाल, योगीन्द्र, बाबूराम, निरंजन, तारक, शरत्, शशी, गोपाल, काली और लाटू। बचा हुआ गेरुआ वस्त्र बाद में गिरीशचन्द्र घोष ने ग्रहण किया था। संन्यासियों का संघ बनाने की दृष्टि से यह एक अविस्मरणीय घटना है, क्योंकि यह अनुष्ठान भावी रामकृष्ण-संघ के लिए बीजारोपण सदृश था। ठाकुर ने अपने त्यागी शिष्यों को माधुकरी करने के लिए भी भेजा था। भिक्षा में प्राप्त अन्न को पकाकर ठाकुर को दिया गया था, जिसे उन्होंने आनन्दपूर्वक ग्रहण किया था। वे कहते थे माधुकरी से प्राप्त अन्न शुद्ध होता है। इन्हीं दिनों नरेन्द्रनाथ के मन में निर्विकल्प समाधि अनुभव करने की इच्छा तीव्र होती जा रही थी, अत: एक दिन उन्होंने ठाकुर से यह बात निवेदित की। ठाकुर ने उन्हें आश्वासन दिया कि स्वास्थ्य में सुधार हो जाने पर इसकी व्यवस्था कर देंगे, परन्तु नरेन्द्र का मन न माना। अन्त में ठाकुर ने कहा – ''तू क्या चाहता है, बोल?'' नरेन्द्र ने कहा – ''मेरी इच्छा होती है कि शुकदेव के समान पाँच-छह दिन तक निरन्तर समाधि में डूबा रहूँ, बीच-बीच में देह रक्षा के लिए थोड़ा-सा नीचे उतरकर फिर समाधि में लीन हो जाया करूँ।'' यह सुनकर ठाकुर ने तीव्र तिरस्कार करते हुए कहा – ''छी:, छी: ! तू इतना बड़ा आधार है और तेरे मुख से ऐसी बात ! मैंने तो सोचा था कि तू एक विशाल वटवृक्ष के समान होगा। तेरी छाया में हजारों लोग आश्रय पायेंगे। पर तू ऐसा न कर केवल अपनी मुक्ति चाहता है !'' यह सुनकर नरेन्द्र के नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी, उन्हें समझ में आ गया कि श्रीरामकृष्ण का हृदय कितना विशाल है। परन्तु इसके लिए उन्हें अधिक समय अपेक्षा नहीं करनी पड़ी। कुछ दिनों पश्चात् एक दिन सन्ध्या के समय नरेन्द्रनाथ को निर्विकल्प समाधि की अनुभूति हुई। गोपालदादा (अद्वैतानन्द) द्वारा ठाकुर को नरेन्द्र की जड़वत् अवस्था के बारे में बोलने पर ठाकुर ने कहा – ''अच्छा हुआ, उसे थोड़ी देर वैसे ही रहने दो। इसी के लिए तो मुझे तंग कर रहा था।'' रात का एक प्रहर बीत जाने पर नरेन्द्रनाथ सहजावस्था को प्राप्त हुए और ठाकुर के पास आये। तब ठाकुर ने कहा – ''क्यों? माँ ने तो आज तुझे सब दिखा दिया। परन्तु चाभी मेरे हाथ रही। अभी तुझे बहुत कार्य करना होगा। जब मेरा कार्य पूरा हो जाएगा, तो फिर ताला खोल दूँगा।'' जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया और मात्र कुछ दिन ही शेष रह गये, तब एक दिन ठाकुर ने नरेन्द्रनाथ को पास बैठने को कहा और चूँकि वे कहने में कठिनाई अनुभव कर रहे थे, अत: एक कागज पर लिखा – 'नरेन्द्र शिक्षा देगा'। नरेन्द्र ने 'मैं नहीं करुँगा' ऐसा कहकर विरोध किया। परन्तु ठाकुर बोले, 'करना ही पड़ेगा।' इहलोक से प्रस्थान करने के तीन-चार दिन पहले श्रीरामकृष्ण देव ने नरेन्द्र को पास बैठाया और समाधिमग्न हो गये। उस समय नरेन्द्र ने अपने शरीर से एक विद्युतधारा प्रवाहित होती हुई अनुभव की और बाह्य-संज्ञा खो बैठे। जब उनकी संज्ञा लौटी, तो देखा कि ठाकुर अश्रु विसर्जन कर रहे हैं। नरेन्द्र द्वारा इसका कारण पूछने पर ठाकुर बोले, ''ओ नरेन, आज तुझे सर्वस्व देकर फकीर हो गया ! तू इस शक्ति के द्वारा संसार का बहुत कार्य करेगा। कार्य समाप्त होने पर लौट जायेगा। ठाकुर का अन्तिम समय निकट जानकर नरेन्द्रनाथ के मुख से कोई शब्द न निकले, केवल अश्रु विसर्जन होते रहे। लीला-संवरण के दो दिन पूर्व ठाकुर ने नरेन्द्र को बुलाकर कहा, ''देख नरेन, इन सबको तेरे हाथों सौंपे जा रहा हूँ, क्योंकि इनमें तू ही सबसे अधिक बुद्धिमान और शक्तिशाली है। इनसे अत्यन्त स्नेह रखना और ऐसी व्यवस्था करना कि ये घर न लौटकर एक स्थान में रहते हुए साधन-भजन में मन लगायें।'' धीरे-धीरे अन्तिम समय निकट आ पहुँचा। इसी समय नरेन्द्र के मन में अचानक विचार आया – 'अच्छा, इन्होंने तो कई बार स्वयं को भगवान का अवतार कहकर परिचय दिया है; यदि वे इस अवस्था में भी अपने को भगवान् कह सकें, तभी मैं विश्वास करूँगा।' उसी क्षण लीलार्थ शरीरधारी भगवान् इस भीषण रोग यन्त्रणा के बीच भी नरेन्द्र की ओर देखते हुए बोल उठे, ''अब भी तुझे बोध नहीं हुआ? सत्य कहता हूँ – जो राम हुए थे, जो कृष्ण हुए थे, वे ही इस बार इस शरीर में रामकृष्ण हुए हैं, पर तेरे वेदान्त की दृष्टि से नहीं।'' नरेन्द्र विस्मित हुए तथा अपने अपराध के लिए मौन अश्रुविसर्जन करने लगे। इस घटना के दो दिन पश्चात् ही श्रीरामकृष्ण देव १६ अगस्त, १८८६ ई. (रात्रि १.०६ बजे, झूलन पूर्णिमा) को महासमाधि में लीन हुए।

अपने प्राणप्रिय पुरुष के अभावबोध से शोक सन्तप्त भक्तों ने उनके पवित्र शरीर का अन्तिम-संस्कार दूसरे दिन कोलकाता के काशीपुर श्मशान घाट पर किया एवं अस्थि-भस्म को एक ताँबे के पात्र में लाकर ठाकुर के उद्यान-भवन के शयन कक्ष में रखा। परन्तु ठाकुर के स्थूल देह-त्याग देने

पर भी उनकी उपस्थिति का प्रमाण मिलता रहा। भारतीय सामाजिक परम्परानुसार पति-वियोग के पश्चात् पत्नी शृंगार नहीं करती, सिन्दूर आदि नहीं लगाती। इसी प्रथा का पालन करते हुए श्रीमाँ कंकण निकालने लगीं, तो श्रीरामकृष्ण ने उन्हें दर्शन देकर कहा, ''क्या मैं मर गया हूँ, जो तुम स्त्रियों के सौभाग्यचिह्न हाथों से निकाल रही हो?'' अत: श्रीमाँ ने कंकण नहीं उतारा। ठाकुर ने चिन्मय-देह से दर्शन दिया है, यह सूचना फैलते ही भक्तगण आनन्द और आश्चर्य से विह्वल हो उठे। किन्तु ठाकुर के अन्तर्धान से श्रीमाँ इतनी व्याकुल हो गई थीं कि उन्होंने देह छोड़ने का निश्चय किया। ठाकुर पुन: उन्हें दर्शन देकर बोले, ''नहीं, तुम्हें रहना होगा; अभी बहुत-सा काम बाकी है।'' आगामी चौतीस वर्ष श्रीमाँ संघजननी के रूप में रामकृष्ण-संघ में ठाकुर के मातृभाव का प्रसार करती रहीं और अपने अलौकिक प्रेम से इसे परिपुष्ट करती रहीं। इसके अतिरिक्त, ठाकुर के स्थूल देह-त्याग के एक सप्ताह के भीतर एक दिन सन्ध्या के समय उद्यान में टहलते समय नरेन्द्रनाथ को अपने सामने ठाकुर की ज्योतिर्मय मूर्ति दिखाई दी। वे उसे मन का भ्रम सोचकर खड़े रहे, परन्तु साथ खड़े गुरुभाई आश्चर्य से बोल उठे, ''नरेन्द्र, देखो ! देखो !'' तुरन्त नरेन्द्र सभी को पुकारने लगे, परन्तु उनलोगों के पहुँचने के पहले वह ज्योतिर्मय मूर्ति अदृश्य हो चुकी थी। इससे नरेन्द्र समझ गये कि ठाकुर अपनी शाश्वत ज्योतिर्मय देह में दर्शन देने आये थे। स्वामी ब्रह्मानन्द को स्वामीजी ने देउलधर (अलमोड़ा के पास) से १३ जुलाई, १८९७ ई. को लिखा था कि हमलोगों का एकजुट होना उस उद्यान में आरम्भ हुआ था। सच तो यह है कि वही हमलोगों का प्रथम मठ था।

३१ अगस्त के पश्चात् उद्यानवाटी का किराया देने की इच्छा गृहस्थ भक्तों में नहीं थी। अत: यह तय हुआ कि नरेन्द्रनाथ को अपने घर की समस्याओं के समाधान के लिए घर जाना उचित होगा और ठाकुर के बाकी युवा शिष्य अपने-अपने घर लौटकर पढ़ाई में मन लगायें। ठाकुर के अस्थि भस्म को श्रीरामचन्द्र दत्त के काकुड़गाछी (कोलकाता) के मकान में ले जाया जाये, जहाँ ठाकुर के परामर्श पर उन्होंने एक मकान साधन-भजन आदि करने के लिए बनवाया था। ठाकुर स्वयं निर्जन स्थान में बने इस मकान में २६ दिसम्बर, १८८३ ई. को आये थे। उस समय नरेन्द्रनाथ एवं ठाकुर के युवा शिष्यों द्वारा संन्यासी-संघ ठाकुर के इच्छानुरूप है, इस विचार से कोई भी गृहस्थ-भक्त सहमत न था। क्योंकि ठाकुर प्रत्येक की क्षमतानुसार आध्यात्मिक-साधना की शिक्षा देते थे, इसलिये उन्होंने संन्यास-पथ की महिमा केवल कुछ चुने हुए शिष्यों को ही बतायी थी और संन्यासी-संघ बनाने के लिये भी वे आवश्यक दिशा-निर्देश आदि देते रहते थे। अत: दक्षिणेश्वर व काशीपुर उद्यानवाटी में इस विषय पर क्या गतिविधि चल रही थी, उसका अनुमान गृहस्थ-भक्तगण नहीं लगा सके थे। ठाकुर के जीवन एवं उनके उपदेश के प्रचार का कार्य श्रीरामचन्द्र दत्त, श्रीमनोमोहन और सुरेशचन्द्र दत्त ने श्रीरामकृष्ण देव के दक्षिणेश्वर में निवास करते समय ही करना आरम्भ कर दिया था, यथा पुस्तकों और पत्रिकाओं का प्रकाशन, जनसभा में व्याख्यान देना, शोभायात्रा का आयोजन करना आदि। यह उनलोगों ने ठाकुर के बारे में अपनी-अपनी धारणा के अनुसार किया था और नरेन्द्रनाथ व उनके साथ सहमति रखनेवालों के विचारों से असहमत भी थे। इस विषय पर स्वामीजी ने 'मेरा जीवन तथा ध्येय' इस शीर्षक के अन्तर्गत २७ जनवरी, १९०० ई. को पैसाडोना, अमेरिका में दिये व्याख्यान में श्रीमाँ सारदा का उल्लेख करते हुए कहा था –

'वे ही एक ऐसी देवी थीं, जिन्हें उन बालकों की विचारधारा से कुछ सहानुभूति थी। लेकिन उनके पास शक्ति ही क्या थी, वे तो हम लोगों से भी निर्धन थीं। पर चिन्ता नहीं, हम लोग तो धारा में कूद पड़े थे। मेरा विश्वास था कि इन विचारों से भारत अधिक ज्ञानोद्भासित होगा तथा भारत के सिवा और भी अनेक देशों और जातियों का इससे कल्याण हो सकेगा। तभी यह अनुभव हुआ कि इन विचारों का नाश होने देने के बदले कहीं तो यह श्रेयस्कर कि कुछ मुट्ठी भर लोग स्वयं अपने को मिटाते रहें ! क्या बिगड़ जायेगा, यदि एक माँ न रही, यदि दो भाई मर गये तो (स्वामीजी ने अपने घर की परिस्थिति के बारे में संकेत दिया)? यह तो बलिदान है, यह तो करना ही होगा। बिना बलिदान के कोई भी महान कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। कलेजे को बाहर निकालना होगा और निकालकर पूजा की वेदी पर उसे लहूलुहान चढ़ा देना होगा। तभी कुछ महान् की उपलब्धि होती है। ...कितना मूल्य चुकाना पड़ा है किसी सफल कार्य का? कैसी वेदना, कैसी पीड़ा ! प्रत्येक सफल क्रिया के पीछे कैसी भयानक यातना की कहानी है! हर जीवन में ही ! ...और बस इसी तरह हम बालकों का

समूह आगे चलता गया, बढ़ता गया। हमारे निकट के लोगों ने चारों ओर से हमें जो दिया, वह थी गाली और ठोकर। द्वार-द्वार पर हमें भोजन की भिक्षा माँगनी पड़ी, कहीं दुत्कार मिली तो कहीं घुड़की ! ...अन्त में हमें एक घर भी मिल गया – टूटा-फूटा खण्डहर, जिसमें रहते थे फुफकारते काले नाग। पर हमें उसे ही लेना पड़ा – सबसे सस्ता जो था न ! हम उसमें गये और जाकर रहे।' ...स्वामीजी बोले – सारे भारत का भ्रमण किया। निराशाजनक परिस्थिति में से जाते हुए भी पारस्परिक सहयोग और आपसी प्रेम के कारण सदा आशा की एक किरण बनी रही। क्रमश: लगभग सौ पूर्णत: विश्वस्त साथी मिले, स्त्री एवं पुरुष – यह बड़े सौभाग्य की बात है। सुख में, दु:ख में, अकाल में, दर्द में, कब्र में, स्वर्ग में, नरक में, जो साथ न छोड़े, सचमुच वही मेरा मित्र है। ऐसी मैत्री क्या हँसी मजाक है? ऐसी मैत्री से तो मोक्ष भी मिल सकता है। ...और उन संकट के दिनों में वही बात हम सबमें थी और उसी के बल पर हिमालय से कन्याकुमारी तथा सिन्धु से ब्रह्मपुत्र तक हमने भ्रमण किया था। ...'समझौता हम नहीं करेंगे', यही हमारा मूलमन्त्र था।' यह आदर्श है और इसे चरितार्थ करना ही होगा। यदि हमें राजा भी मिले, तो भी हम उससे अपनी बात कहे बिना न रहेंगे, भले ही हमें प्राणदण्ड क्यों न दे दिया जाये ! और यदि कृषक मिला, तो उससे भी यही कहेंगे।' अत: हमारा विरोध होना स्वाभाविक था। ...यदि तुम नि:स्वार्थ और हृदय के सच्चे हो, तो तुममें अन्तर्निहित परमात्मा की शक्ति के समक्ष, ये सारी विघ्न-बाधाएँ क्षार-क्षार हो जायेंगी। वे युवक बस ऐसे ही थे। हमारे गुरुदेव ने कहा, ''मैं प्रभु की वेदी पर उन्हीं फूलों को चढ़ाना चाहता हूँ, जिनकी सुगन्ध अभी तक किसी ने नहीं ली, जिन्हें अपनी अँगुलियों से किसी ने स्पर्श नहीं किया।'' उन महात्मा (ठाकुर) के ये शब्द हमें जीवन देते रहे। उन्होंने कोलकाता की गलियों से समेटे हुए इन बालकों के जीवन की सारी भावी रूप-रेखा देख ली थी। जब वे कहते, ''देखना इस लड़के को, उस लड़के को आगे चलकर क्या होगा वह, तब लोग उन पर हँसते थे। पर उनकी आस्था और विश्वास अडिग था। वे कहते, यह तो मुझसे माँ (जगन्माता) ने कहा है, मैं निर्बल हूँ सही, पर जब वह ऐसा कहती है, तो उससे भूल नहीं हो सकती, तब तो अवश्य ऐसा ही होगा।''

काशीपुर उद्यानवाटी में श्रीरामकृष्ण देव की संगठन बनाने की कुशलता के बारे में जानने योग्य बातें –

(१) ठाकुर ने दक्षिणेश्वर में अपने स्वरूप के बारे में निकट भविष्य में स्पष्ट करने के जो संकेत दिये थे, उनको स्पष्ट किया। (२) ठाकुर के भक्तों में कौन अन्तरंग और बहिरंग हैं, इसका स्पष्टीकरण करना – उन्होंने कहा था, जो लोग संसार त्यागकर यहाँ हैं, वे अन्तरंग हैं। और कहा था, दो प्रकार के भक्त यहाँ आते हैं, एक प्रकार के हैं, जो कहते हैं मेरा उद्धार करो। दूसरे प्रकार के हैं, वे अन्तरंग हैं, वे ऐसी बातें नहीं करते हैं –'ऐसे लोग दो प्रश्न के उत्तर जानना चाहते हैं (क) मैं कौन हूँ एवं वे स्वयं कौन हैं और (ख) मेरे साथ उनका क्या सम्बन्ध है।' उनकी गले की व्याधि को देखकर सकाम भक्तिवाले दूर हट जायेंगे और शुद्ध भक्तिभाव वाले साथ रहेंगे। उन अन्तरंग भक्तों को ठाकुर ने साधना-पद्धति की बारीकियाँ समझायी थीं। (३) स्वामी सारदानन्द के अनुसार काशीपुर में निवास करते समय कठिन व उच्चकोटि की साधना करने योग्य शिष्यों के मन में जो भाव प्रधान होता, उसका वह भाव और प्रबलतर हो जाता और ठाकुर अपनी दिव्य शक्ति से उसके मन में उपस्थित बाधाओं को हटा देते थे। आध्यात्मिक साधना के शिविर में यहाँ साधकों के चरम लक्ष्य 'निर्विकल्प समाधि' की अनुभूति नरेन्द्रनाथ को हुई थी। यहाँ शशी ने सेवा का आदर्श दृष्टान्त सबके सम्मुख रखा था एवं उनके गुरुभाई ठाकुर की सेवा के साथ-साथ शास्त्र-पाठ तथा साधन-भजन में लीन रहते थे। निरक्षर लाटू को समाधि का प्रथम आस्वादन यहाँ मिला था। इस प्रकार यह उद्यानवाटी साधना-स्थली बन गई थी। (४) यहाँ अध्यात्मजीवन को दृढ़तर बनाने हेतु त्यागी युवा शिष्यगण एक सूत्र में बँधते जा रहे थे। ठाकुर को प्रेममय वातावरण का केन्द्र बनाकर ये युवा शिष्यगण मानो उस केन्द्र से निकलती हुई किरण थे। साथ ही श्रीमाँ सारदा के अलौकिक प्रेम से आपसी सम्बन्ध शक्तिशाली होता जा रहा था। ठाकुर से सुनकर एवं कोई अपने अनुभव से श्रीमाँ को श्रीरामकृष्ण की 'शक्ति' एवं श्रीरामकृष्णलीला के अभिन्न अंग के रूप में जानने लगे थे। (५) नरेन्द्र को निर्विकल्प समाधि का अनुभव कराकर ठाकुर ने उन्हें अपनी लीला के अगले चरण में किये जानेवाले कार्य का दायित्व सौंपा। ११ फरवरी, १८८६ ई. को ठाकुर ने एक कागज पर चित्र अंकित कर पास में लिखा – 'जय राधे प्रेममयी, नरेन शिक्षा देगा, जब घर-बाहर हुँकार देगा, जय राधे।' और उसे नरेन्द्र के हाथ

पर रख दिया। नरेन्द्रनाथ ने प्रतिवाद किया, 'मैं वह सब न कर सकूँगा।' ठाकुर ने शान्त, किन्तु दृढ़ शब्दों में कहा, 'तू अवश्य करेगा।' उन्होंने केवल आदेश ही नहीं दिया, साथ ही नरेन्द्र को इस कार्य के लिए शक्तिसम्पन्न भी किया।

वराहनगर मठ – अन्ततः अस्थिभस्म-कलश को श्रीयुत रामचन्द्र दत्त की उद्यानवाटी (काँकुड़गाछी) में रखने का निर्णय लिया गया। इसी बीच शशी (स्वामी रामकृष्णानन्द) और निरंजन (स्वामी निरंजनानन्द) ने अस्थि-भस्मावशेष का आधे से अधिक भाग अलग कर एक पात्र में श्रीबलराम वसु के घर भेज दिया। २२ अगस्त, १८८६ ई. को श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के दिन पहला कलश कलकत्ते से शशी अपने सिर पर वहन करते हुए कीर्तन करते हुए भक्तों के पीछे-पीछे अधिकांश मार्ग तक ले गये। अन्त में यथोचित पूजा के पश्चात् भूमि खोदकर कलश की स्थापना की गई। ठाकुर की लीलादेह के तिरोधान के बाद उनके गृहस्थ भक्त श्रीसुरेन्द्रनाथ मित्र एक दिन सन्ध्या के समय पूजाघर में बैठे थे कि उन्हें एक दिव्य दर्शन प्राप्त हुआ। अचानक ही उन्होंने देखा कि श्रीरामकृष्ण प्रकट होकर कह रहे हैं, ''तू कर क्या रहा है? मेरे बच्चे सब इधर-उधर भटक रहे हैं, पहले उनके लिए कोई व्यवस्था कर।'' यह सुनते ही उन्मत्त की भाँति सुरेन्द्रनाथ निकट में नरेन्द्रनाथ के घर पहुँचे और उपरोक्त घटना को सुनाया। फिर अश्रुसिक्त कण्ठ से बोले, ''भाई एक जगह ठीक कर लो, जहाँ पर ठाकुर का चित्र, भस्म-अस्थियाँ तथा उनकी उपयोग की हुई चीजें रखकर विधिपूर्वक पूजन हो, जहाँ पर तुम काम-कांचन त्यागी भक्तगण एक साथ रह सको। बीच-बीच में हम लोग भी वहाँ आकर शान्ति पाएँगे। मैं काशीपुर में प्रतिमास जो रुपये दिया करता था, वह देता रहूँगा।'' नरेन्द्रनाथ इस प्रस्ताव को सुनकर आनन्द विभोर हो गये। बहुत प्रयास के पश्चात् वराहनगर मुहल्ले में गंगातट पर एक जीर्ण उद्यान भवन ग्यारह रुपये मासिक किराये पर मिला। यहीं १८८६ ई. के आश्विन मास के अन्तिम दिनों में प्रथम रामकृष्ण मठ आरम्भ हुआ। सुरेन्द्रनाथ ने प्रथम दो मास तीस रुपये दिये, तत्पश्चात् जैसे-जैसे ठाकुर के त्यागी युवा शिष्य सम्मिलित होते गये, व्यय में वृद्धि अधिक होने लगी, तो उनकी दान की राशि भी बढ़ते हुए सौ रुपये तक जा पहुँची – ग्यारह रुपये मकान का किराया, छः रुपये रसोइये का मासिक वेतन और शेष भोजन के लिए। श्रीरामकृष्ण-वचनामृतकार 'श्रीम' लिखते हैं – ''सुरेन्द्र ! तुम धन्य हो ! यह पहला मठ तुम्हारे ही हाथों तैयार हुआ ! तुम्हारी ही पवित्र इच्छा से इस आश्रम का संगठन हुआ ! तुम्हें यन्त्रस्वरूप बनाकर भगवान श्रीरामकृष्ण ने अपने मूलमन्त्र कामिनी-कांचन-त्याग को मूर्तिमान कर लिया। ...भाई, तुम्हारा ऋण कौन भूल सकता है? मठ के भाई मातृहीन बच्चों की तरह रहते थे, तुम्हारी प्रतीक्षा करते थे कि तुम कब आओगे – आज मकान का किराया चुकाने में सब रुपये खर्च हो गये, आज भोजन के लिए कुछ भी नहीं बचा, कब तुम आओगे और आकर

वर्तमान वराहनगर मठ

भाइयों के भोजन की व्यवस्था करोगे।'' घर मिल जाने के पश्चात् ठाकुर का बिस्तर और अन्य व्यवहार की गई वस्तुएँ यहाँ लाकर रखी गईं। काशीपुर के रसोइये ने यहाँ रसोई का कार्य संभाला। शरतचन्द्र जो कि मेडिकल कालेज में अध्ययनरत थे, इस समय स्थाई रूप से न रह सके। बूढ़े गोपाल (स्वामी अद्वैतानन्द) इस मठ के सम्भवतः प्रथम स्थाई सदस्य बने। तारक (स्वामी शिवानन्द) को काशी से आने के लिए पत्र लिखा गया। किसी ने भी इस मकान की स्थिति के बारे में कोई आपत्ति नहीं की। स्वामी विरजानन्दजी ने वराहनगर मठ १८९१ ई. में जाना आरम्भ किया था। उनकी पुस्तक *अतीतेर स्मृति कथा* (अतीत की स्मृति कथा) से उद्धृत अंश – एक जीर्ण मन्दिर के अहाते में बने इस मकान में बना मठ बाहर से नहीं दिखता था। आसपास की भूमि पर कुछ सजना, बेल, नारियल और आम के पेड़ थे। चारों ओर वर्षों की गंदगी, जंगली घास उगी हुई थी, जो कि साँप और सियारों का वास-स्थान होता था। सुना जाता

था कि यहाँ कई हत्याएँ हुई थीं। ऊपरी मंजिल पर ठाकुर की पूजा का कमरा, पूजा के काम के लिए, युवा संन्यासियों के निवास के लिए, भोजन करने के लिए कमरे आदि थे। संन्यासियों के कमरे में दीवारों पर देवी-देवताओं, अवतारों और सूली पर चढ़े ईसा मसीह के चित्र थे। इस कमरे में एक ओर चारपाई पर कुछ बंगला, संस्कृत और अंग्रेजी पुस्तकें थीं और कुछ वाद्य-यन्त्र थे। दीवार पर एक तानपुरा टंगा हुआ था। यही कमरा शयन-कक्ष तथा आगन्तुकों से मिलने के काम आता था। यहाँ नरेन्द्रनाथ अपने गुरुभाइयों के साथ श्रीरामकृष्ण, शंकराचार्य, रामानुज, ईसा मसीह, प्राच्य एवं पाश्चात्य दर्शन, वेद, पुराण आदि के बारे में चर्चा किया करते थे। वे अपने मधुर सुर से गीत गाते और गुरुभाइयों को सिखाते भी थे। पूजा-घर के मध्य में फर्श पर चटाई पर गद्दा व तकिया रखकर ठाकुर का चित्र रखा गया था, इसी के दूसरी ओर एक पीढ़े पर ठाकुर के अस्थि-भस्म का कलश और जूते रखे हुए थे, जिसके सामने बैठकर स्वामी रामकृष्णानन्द पूजा किया करते थे।

तत्कालीन बंगाल में यह एक अभिनव प्रयास था। उस समय बंगाल में वैष्णव संन्यासी-संन्यासिनीगण मन्दिर से

पुराना वराहनगर मठ

लगे मठों में रहते और भिक्षा पाते थे। भारत के अन्य स्थानों से गंगासागर या पुरी की ओर जाते समय साधु, संन्यासी बंगाल में आते थे। परन्तु वराहनगर मठ के ये शिक्षित और सम्भ्रान्त परिवार से आये हुए युवा संन्यासी कोलकाता में ही एक पुराने जीर्ण मकान में रहकर अद्वैतवाद को आध्यात्मिक जीवन का आधार बनाकर भक्ति, ध्यान आदि का अभ्यास कर रहे हों, यह दृश्य बंगवासियों के लिए आश्चर्यजनक था। इसके अतिरिक्त प्राचीनकाल से समाज में पूजित अन्य अवतारों में से किसी को अपनी भावनाओं के अनुसार चुन लेना क्या पर्याप्त नहीं होता? इतना ही नहीं, श्रीरामकृष्ण देव को अवतार के रूप में सम्मुख रखकर गेरुआ वस्त्र पहनकर पूजा करना, सब कुछ भ्रान्त मस्तिष्कवालों की चेष्टा दीख पड़ती थी और जनसाधारण के लिए समझ के परे थी। अत: परिचित एवं अपरिचित लोगों में प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक थी और उसे सहन करना सहज न था। साथ-साथ मठ के लगभग सभी सदस्यों को पारिवारिक समस्याएँ सुलझाने का दायित्व भी वहन करना पड़ रहा था। नरेन्द्रनाथ की समस्या कुछ अधिक जटिल थी, वे युवा संन्यासियों का नेतृत्व कर रहे थे, अत: उन्हें सांसारिक बन्धनों को पूर्णत: त्यागना अत्यन्त आवश्यक था। साथ ही पिता के देहान्त के पश्चात् सम्पत्ति लेने के लिए सगे-सम्बन्धियों द्वारा किये गये कानूनी झगड़े को सुलझाना और माता व भाई-बहनों के लिए जीवन-धारण करने की आवश्यकताओं का अभाव मिटाने की स्थाई व्यवस्था करना था। इन दोनों समस्याओं को सुलझाना मठ में रहकर सम्भव नहीं था। वे यथासम्भव मठ में रहते और कम-से-कम समय में जितना हो सके, कोलकाता जाकर दोनों समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने का प्रयास करते। इसी बीच गुरुभाई कालीप्रसाद (स्वामी अभेदानन्द) और शशी (स्वामी रामकृष्णानन्द) भी मठ में आकर रहने लगे। दिसम्बर, १८८६ ई. के अन्तिम सप्ताह में बाबूराम (स्वामी प्रेमानन्द) की माता के स्नेहपूर्ण आमन्त्रण पर आँटपुर (बाबूराम के पैतृक-निवास स्थान, कलकत्ता से पचास कि.मी.) कुछ दिनों के लिए नरेन्द्रनाथ अपने गुरुभाइयों – बाबूराम, शरत, शशी, तारक, काली, निरंजन, गंगाधर और सारदाप्रसन्न के साथ गये। रेलयात्रा के दौरान वाद्ययन्त्र बजाकर नरेन्द्रनाथ के साथ सबने भक्तिगीत गाये। आँटपुर पहुँचकर नरेन्द्रनाथ के साथ ध्यान, भजन, प्रार्थना, स्वाध्याय और आध्यात्मिक जीवन पर चर्चा करते हुए गुरुभाइयों का समय व्यतीत होता था। बाबूराम के परिवार के सदस्य इस कार्य में पूर्ण सहयोग देते थे। ठाकुर के अनुसार बाबूराम ईश्वरकोटि श्रेणी के थे। वे कहते थे कि बाबूराम की अस्थिमज्जा पर्यन्त

पवित्र है। बाबूराम की भगिनी कृष्णभाविनी को ठाकुर ने श्रीराधारानी की अष्टसखियों में प्रधान कहा था, वे गृहस्थ भक्त बलराम वसु की पत्नी थीं। बाबूराम की माँ श्रीमती मातंगिनी देवी को ठाकुर ने कई बार उच्च आध्यात्मिक आधार का बताया था। ऐसे पवित्र एवं भक्तिभाव वाले परिजनों का साथ तथा आसपास का शान्त वातावरण भी आध्यात्मिक साधना के प्रति बड़ा सहायक था। उन दिनों नरेन्द्रनाथ संन्यास जीवन के प्रति आकर्षित होकर गुरुभाइयों को सांसारिक माया-मोह के प्रति वैराग्यवान और आध्यात्मिक साधना को जीवन का आधार बनाने के लिए प्रेरणा देते रहते थे। यहीं नरेन्द्रनाथ एवं उनके गुरुभाईयों के मध्य भ्रातृत्व का सम्बन्ध अटूट बना। श्रीरामकृष्ण देव जिन्होंने दक्षिणेश्वर, श्यामपुकुर और काशीपुर इन सभी शिष्यों को एकजुट किया था, वे अभी भी उनके बीच विराज रहे थे। नरेन्द्रनाथ और गुरुभाइयों के मन की भावनाओं-विचारों ने स्पष्ट रूप तब लिया, जब एक रात खुले आकाश के नीचे अग्नि प्रज्वलित कर सभी ध्यान करने बैठे। ध्यान कुछ दीर्घ समय तक चला, जिसके अन्त में नरेन्द्रनाथ ने ओजपूर्ण वाणी के द्वारा – ईसा मसीह की जीवन की प्रमुख घटनाएँ तथा जीवन के प्रत्येक मोड़ उन्होंने अपने मन को वैराग्यपूर्ण बनाए रखा – इस गुण को अपने व्यक्तिगत जीवन में प्रमुखता देने को कहा। साथ ही गुरुभाइयों को धार्मिक शिक्षा के दूत बनकर मुक्ति का संदेश समग्र विश्व में फैला देने का दायित्व ग्रहण करने की प्रेरणा दी। तत्पश्चात् अग्नि को साक्षी मानकर सभी ने दण्डायमान

होकर त्याग-वैराग्य का जीवन व्यतीत करने की प्रतिज्ञा की। संयोग से उपरोक्त घटना ईसा मसीह के जन्मदिन की पूर्व सन्ध्या को हुई थी।

इस प्रकार आँटपुर में नरेन्द्रनाथ का साधुसंग ठाकुर के इन त्यागी भक्तों के मन में वैराग्य की अग्नि को प्रज्वलित करने में सहायक हुआ। एक-एक करके शेष त्यागी शिष्य – राखाल, निरंजन, बाबूराम, शरत्, हरि, सारदाप्रसन्न और सुबोध – भी वराहनगर मठ में सम्मिलित हुए। लाटू वृन्दावन में छ: महीने बिताकर लौट आने पर मठ में सम्मिलित हुए। श्रीमाँ के वृन्दावन से कोलकाता लौटने पर योगीन्द्र ने भी मठ में रहना आरम्भ किया। इस समय मठ के अन्तेवासियों को संन्यास जीवन के नियम और घर की समस्याएँ लेकर मानसिक द्वन्द्व से भी उलझना पड़ा। नरेन्द्रनाथ के लिए सम्बन्धियों द्वारा न्यायालय में किये गये मुकदमे का हल निकालने की समस्या सहज न थी। शशी को घर की आर्थिक स्थिति सम्भालने का दायित्व के बारे में समझाकर उनके पिता उन्हें ले जाने हेतु मठ आये, परन्तु दृढ़ संकल्प होकर शशी ने सांसारिक जीवन को अस्वीकार कर दिया। राखाल ने पिता के अतिशय आग्रह को अस्वीकार कर घर जाने से मना कर दिया। शरत् मेडिकल कालेज की पढ़ाई बीच में छोड़ने के अनिच्छुक थे। उस समय नरेन्द्रनाथ एवं कालीप्रसाद घंटों शरत् को मर्मस्पर्शी भाषा में ठाकुर की शिक्षा का स्मरण कराते और मठवास करने के लिए समझाते। दूसरी ओर उनके पिता दृढ़तापूर्वक शरत् के मठ जाने का विरोध किया करते। अन्तत: शरत् घर त्यागकर मठ में आकर गुरुभाइयों के साथ सम्मिलित हुए। माता-पिता समझ गये, पुत्र पर क्रोध करना व्यर्थ है, दोनों ने एक दिन वराहनगर मठ जाकर पुत्र शरत् को सर्वांगीण उन्नति के लिए आशीर्वाद दिया। हरिनाथ वैराग्य की तीव्र भावना से एक मात्र वस्त्र पहनकर किसी को बिना बताये शिलाँग तक भ्रमण कर आये और १८८७ ई. में वराहनगर मठ में सम्मिलत हुए। गंगाधर घर त्यागकर फरवरी, १८८७ ई. में तिब्बत चले गये और १८९० ई. के मध्य में मठ में सम्मिलित हुये। ठाकुर के काशीपुर में निवास करते समय ही सारदाप्रसन्न घर त्याग कर पुरी चले गये थे। वहाँ से लौटकर वे आँटपुर में गुरुभाइयों का सत्संग पाकर तीव्र वैराग्य से उद्दीप्त होकर वराहनगर मठ में सम्मिलित हुए थे। स्वामी विवेकानन्द के अमेरिका से स्वदेश लौटने के बाद हरिप्रसन्न मठवासी हुए। **(क्रमश:)**

हे प्रभु, हमारा जिसमें मंगल हो, वही करो !

स्वामी सत्यरूपानन्द

पूर्व सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

शरणागति का भाव रहने से धीरे-धीरे मन से विकार निकल जाता है। नियमित रूप से ईश्वर का चिन्तन करने से हमारी वासनायें कम हो जाती हैं। हमारी वासना ही हमें संसार में डूबाती है। हमें अपने मन को उपासनामय बनाना है। हम सोचते हैं कि जब सुविधा मिलेगी, तब भगवान का नाम लेंगे, पर मरते तक संसार में हमें सुविधा नहीं मिलेगी, इसलिये असुविधाओं में ही हमें भगवान का नाम लेने का अभ्यास करना है। पहले हमें भगवान की सेवा करनी है, बाद में संसार का काम करना है। इससे ही हमारी उन्नति होगी।

भगवान हमारे हृदय में नित्य विराजमान हैं। उनका अन्त नहीं है। वे अनन्त हैं। हम सब दुर्योधन के दल के हैं। हमारे मन में मोह भरा हुआ है। मोह के कारण हम आसक्त हो जाते हैं। अत: आसक्ति से बचें।

भगवत्प्राप्ति के लिए साधक में धैर्य का गुण आवश्यक है। हमारे मन में चंचलता है। धीरज रखकर लगातार लगे रहना है। हमें मन को पवित्र रखना है। दूसरे की नकल कभी नहीं करना है। आध्यात्मिक जीवन में मन की पवित्रता का अधिक महत्त्व है। हमें राग और द्वेष से बचकर निरन्तर साधना में लगे रहना है। हमें दोष-दर्शन से बचना चाहिए। माँ सारदा कहती थीं, किसी में दोष नहीं देखना चाहिए। किसी के दोष देखने से हमारा ही मन दोषी होता है। हमारे मन में क्या-क्या विचार आ रहे हैं, इसे गम्भीरता से देखना चाहिए। बिना किसी आधार का भाव नहीं होता। भाव का तात्पर्य है हमारे मन में जो अच्छे विचार आते हैं। जैसे हम भक्ति मार्ग से जाते हैं, तो हमारे मन में ईश्वरीय भाव आते हैं। आध्यात्मिक जीवन में भाव का महत्त्व है। भगवान हमारा भाव देखते हैं। भगवान तो 'भावग्राही जनार्दन' हैं। यदि हमारे जीवन में किसी के प्रति ईर्ष्या आयेगी, तो हम नष्ट हो जायेंगे। मृत्यु का भय रखने से हम बहुत-से दोषों से बच जाते हैं।

यदि हम भगवान से जुड़े नहीं रहेंगे, तो हमारे जीवन के दिन पूरे हो जाने पर हमारे बुरे कर्म हमसे बदला लेते हैं। तब गुरु और ईश्वर के सिवा कोई तुम्हें बचानेवाला नहीं है। दूसरों से द्वेष करोगे, तो नरक में जाओगे। उसका कुछ नहीं होगा। हमें ईश्वर ने सब प्रकार की सम्पन्नता दी है, तो अधिक से अधिक समय भगवान के लिए निकालें। भगवान को पुकारो। जो कर्म हमें मिला है, उसे भगवत्प्रीत्यर्थ करने से हमारे कर्म अच्छे हो जाते हैं। वेदान्त कहता है, हम ही अपने भाग्य के विधाता हैं। कर्म अच्छे करोगे, तो अच्छा फल मिलेगा। बुरे कर्म करोगे, तो बुरा फल मिलेगा। अपने कर्मों के द्वारा ही हमारी मुक्ति होगी और अपने ही कर्मों के द्वारा बंधन में पड़ेंगे। प्रभुप्रीत्यर्थ कर्म करने से मुक्ति मिलती है। जहाँ स्वार्थ आता है, वहीं बन्धन पड़ जाते हैं।

हमें भगवान से एक सम्बन्ध स्थापित करना है। जैसे मातृभाव, सखाभाव। हम कई प्रकार से भगवान की सेवा कर सकते हैं। लेकिन भाव न रहने से सम्भवत: सब ठीक होता है और हम सफल नहीं होते। हमारे शास्त्रों में मातृभाव से पूजा करने को कहा गया है। कहा गया है – **या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता** – हे देवि तुम सभी प्राणियों में माँ के रूप में विराजमान हो। क्योंकि मनुष्य के जीवन में सबसे पहले माँ से ही सम्बन्ध होता है। कल्पना का आश्रय लेने से धीरे-धीरे कल्पना सत्य हो जाती है। अपने इष्ट को मूर्ति नहीं समझना है। उन्हें जीवन्त, जाग्रत, ज्योतिर्मय रूप में देखना चाहिए। ईश्वर के प्रति अपनत्व की भावना होनी चाहिये। हमारी पूजा और प्रार्थना मेकेनिकल नहीं होनी चाहिए, भावपूर्ण होनी चाहिए। अपने मन से कटुता निकालने के लिए भगवान से प्रार्थना करें और दूसरों का अशुभचिन्तन न करें। भगवान से प्रार्थना करनी है – हे प्रभु ! हमारा जिसमें मंगल हो, वही करो। ○○○

युवा-जीवन में सत्संग का प्रभाव

रीता घोष, बैंगलूरू

युवाओ ! आज हम ऐसे कुछ युवाओं के विषय में जानेंगे, जो अपनी युवावस्था में गलत-संगति के कारण पथ-भ्रष्ट हो गये थे और अपने अमूल्य मानव-जीवन को नष्ट कर रहे थे। किन्तु सज्जन पुरुष, महापुरुष, साधु-संन्यासियों के संग से उनका जीवन पूर्णरूप से परिवर्तित हो गया। इस सत्संग के प्रभाव से उनका अपना जीवन धन्य हो गया और इसके साथ-ही-साथ समाज तथा राष्ट्र भी उनसे लाभान्वित होकर गौरवान्वित हुआ।

प्रकृति में कोटि प्रकार की प्रजातियाँ हैं, उसमें मनुष्य ही मात्र प्रकृति का अनुपम श्रेष्ठ जीव है, जिसमें आत्मचेतना व आत्म-विश्लेषण करने की अन्तर्निहित शक्ति है। इसीलिये वेदान्त में मनुष्यत्व को भगवत्कृपा का प्रथम सोपान कहा गया है। करोड़ों मनुष्यों में मात्र अल्प ही मनुष्य इस जीवत्व से मुक्ति पाने के लिए अपनी अन्तर्निहित शक्ति का उपयोग करते हैं। शास्त्र में कहा गया है – ईश्वर की कृपा से मनुष्य-शरीर की प्राप्ति होती है।

मनुष्य का दूसरा कोई शत्रु नहीं, बस एक ही शत्रु है और वह है अज्ञान। इसी अज्ञान के वशीभूत होकर वह भयंकर अनुचित कर्मों में प्रवृत्त होता है।

सत्संगति आनन्द और कल्याण का मूल है। सत्संग की प्राप्ति ही फल है और सब साधन तो फूल हैं। जीव बुद्धि, कीर्ति, सद्गति, विभूति जो कुछ प्राप्त करता है, वह सभी सत्संग के ही प्रभाव से सम्भव होता है।

सत्संग के प्रभाव का बहुधा उदाहरण साधु-संतों एवं भक्तों के जीवन में देखने को मिलता है। भगवान बुद्ध के सम्पर्क में आने से अंगुलीमाल के जीवन में परिवर्तन की कहानी सबको ज्ञात है। अंगुलीमाल एक भयंकर दस्यु था और पथिकों की हत्या कर उनकी ऊंगलियों का संग्रह करता था, परन्तु भगवान बुद्ध के निडर-शान्त चेहरे का भाव, उनकी वाणी की कोमलता ने उसके हृदय को द्रवित कर दिया और वह अपने घृणित एवं निष्ठुर कार्य व संकल्प से विरत होकर सदा के लिए भगवान बुद्ध की शरण में आ गया।

श्रीचैतन्य महाप्रभु के जीवन-चरित में भी दो ऐसे ही निर्मम-निष्ठुर प्रकृति के भाइयों के बारे में उल्लेख मिलता है, जिनका नाम जगाई और मधाई था। ये दोनों भाई उस समय बंगाल के नवद्वीप में नगर-रक्षक के रूप में नियुक्त थे। ये दोनों ब्राह्मण संतान होते हुए भी स्वधर्म को भूलकर गुण्डा-प्रकृति के थे एवं धर्म-प्रचार, भजन-कीर्तन आदि के कठोर विरोधी थे। जब नित्यानन्द धर्म-प्रचार एवं कीर्तन हेतु नगर-भ्रमण करने निकले, तो उन दोनों भाइयों से उनकी भेंट हो गयी। जगाई-मधाई उन्हें भजन-कीर्तन करने से रोकने लगे। फिर भी जब नित्यानन्द प्रभु कीर्तन आदि से विरत नहीं हुए, तो वे दोनों उन्हें गाली-गलौज करने लगे। उसके बाद क्रोध में एक मिट्टी का कलश जो उनके हाथ में था, उसे नित्यानन्द प्रभु की ओर जोर से फेंक कर मारा। इससे वह कलश नित्यानन्द प्रभु के माथे पर जोर से लगा और टूटकर बिखर गया। नित्यानन्द प्रभु के माथे से रक्त बहने लगा। सभी लोग स्तब्ध खड़े रहे पर, नित्यानन्द प्रभु अपने हरिनाम से विरत नहीं हुए। उन्होंने आगे बढ़कर उन आघातकारी दुष्टों को अपने गले से लगा लिया। उनके प्रेमालिंगन से मोहित एवं लज्जित होकर दोनों भाई उनके पैरों पर गिरकर क्षमा माँगने लगे। इस प्रकार नित्यानन्द प्रभु के प्रेममय संग एवं व्यवहार से जगाई-मधाई सदा के लिए हरिभक्त बनकर उनके शिष्य बन गए।

श्रीरामकृष्ण देव के भक्तों का जीवन-निरीक्षण करने पर सत्संग के प्रभाव का विलक्षण उदाहरण प्राप्त होता है। श्रीठाकुर के भक्तों में कई लोग ऐसे भी थे, जिनका प्रारम्भिक जीवन भोग-विलास एवं उच्छृंखलता में डूबा हुआ था। श्रीठाकुर की दिव्य संगति में आने के पश्चात् उनके जीवन में आमूल परिवर्तन आ गया। भोग-व्यसन के जीवन को त्यागकर वे सदा के लिए ठाकुर के परम अनुरागी भक्त बनकर संयमित जीवन जीने लगे। इनमें से सुरेन्द्रनाथ मित्र एवं गिरीश घोष का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

सुरेन्द्रनाथ मित्र ठाकुर के गृही भक्तों में से एक थे। वह सम्भ्रान्त एवं समृद्धशाली परिवार से होते हुए भी शराब के नशे में प्रचण्ड रूप से आसक्त थे। श्रीरामकृष्ण देव से मिलने के पश्चात् वे उनकी सरलता, प्रेम एवं आध्यात्मिक भावों से अत्यन्त प्रभावित हुए। वे नियमित रूप से दक्षिणेश्वर ठाकुर से मिलने जाया करते थे। उन्होंने कई बार कीर्तन-पूजा आदि अवसरों पर ठाकुर को अपने घर पर आमन्त्रित कर उनका यथोचित आदर-सत्कार कर उन्हें प्रसन्न भी किया, पर इतना सब होने के बाद भी सुरेन्द्र शराब का त्याग नहीं कर पाए। ठाकुर ने भी कभी सुरेन्द्र से शराब त्यागने की बात नहीं की। इसलिये सभी लोग विस्मित थे। एक दिन ठाकुर ने सुरेन्द्र से कहा – ''देखो सुरेन, तुम जितना भी पीना चाहते हो, पीते रहो, परन्तु कुछ भी ग्रहण करने से पहले उसे अपने इष्ट को निवेदित अवश्य करना।'' ठाकुर की ये बातें सुरेन्द्र के लिए अमोघ अस्त्र बन गयीं। अब आगे जब भी वे शराब पीने के लिए सोचते, तो यह सोचकर रुक जाते कि इसे इष्ट को निवेदन कैसे करूँ? इस प्रकार धीरे-धीरे उनकी शराब पीने की आदत जाती रही। कालान्तर में वे ठाकुर के अनन्य भक्तों में गिने जाने लगे। ठाकुर उन्हें अपना 'रसददार' कहा करते थे। काशीपुर में ठाकुर की चिकित्सा के समय अधिकांश व्यय-भार उन्होंने सम्भाला। ठाकुर की महासमाधि के पश्चात् भी उनके त्यागी शिष्यों के रहने-खाने का व्यय भी उन्होंने अपने जीवन के अन्त तक वहनकर अपना कर्तव्य निभाया। रामकृष्ण मठ-मिशन की स्थापना में उनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण है।

ठाकुर के दूसरे भक्त गिरीश घोष की बात अब करते हैं। ठाकुर की कृपा एवं उनके पवित्र-संगत के प्रभाव से प्रभावित गिरीश घोष का जीवन अतुलनीय उदाहरण कहा जा सकता है। गिरीश घोष १९वीं सदी के बंगाल के महान-कवि, साहित्यकार, नाट्यकार एवं विद्वान पुरुष थे। परन्तु बाल्यकाल में ही मातृ-पितृहीन होने से गिरीश का जीवन वात्सल्य-प्रेम से वंचित रहा। किशोरावस्था में ही उनका विवाह कर दिया गया। थोड़े दिनों बाद ही उनकी पत्नी एवं शिशु-कन्या का भी निधन हो गया। भाग्य के इस निष्ठुर एवं बारम्बार आघात ने गिरीश घोष को नास्तिक, ईश्वर-विरोधी बना दिया। स्वयं के प्रयास से उन्होंने प्रभूत विद्या-अर्जन किया। नाट्यकार के रूप में बंगाल में उन्हें असाधारण ख्याति प्राप्ति हुई, पर मन की शान्ति न मिली। माँझी-पतवारहीन नाव के समान वे संसार में भटकते रहे।

मानसिक द्वंद्व में फँसे गिरीश शराब के नशे एवं अन्य दुर्व्यसनों में खो गए। उन्हें चरित्रहीन-शराबी कहा जाने लगा। ऐसे ही कठिन समय में गिरीश को ठाकुर श्रीरामकृष्ण को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। प्रथमत: गिरीश ठाकुर की भाव समाधि, सदा ईश्वर-चिन्तन में लीन रहना, इन सब बातों को समझ नहीं पाए, उन्हें ये सब ढोंग एवं दिखावा जैसा प्रतीत हुआ। वे बारम्बार ठाकुर की अवहेलना करते रहे। उन्हें कठोर शब्दों से अपमानित किया। उनके साथ दुर्व्यवहार करते रहे, पर ठाकुर श्रीरामकृष्ण देव इन बातों से तनिक भी विचलित नहीं हुये। वे गिरीश की अन्तर्मन की व्यथा एवं उनके अन्दर छिपी हुई आध्यात्मिकता को जान गए थे। ठाकुर प्रत्येक बार गिरीश से सप्रेम मिलते रहे। उनके दुर्व्यवहार आदि को क्षमा कर वात्सल्य प्रेम से सिंचित कर उन्हें अपने हृदय से लगा लिया। प्रेम-पिपासु गिरीश ठाकुर की करुणा-धारा के प्रेम-प्रवाह में जैसे बह गए। गिरीश की बाह्य कठोरता और कर्कश रूप का दीवार जैसे ढह गया। ठाकुर के चरणों में गिरकर प्रेमातुर गिरीश बार-बार क्षमा-याचना करने लगे। गिरीश को यह दृढ़-विश्वास हो गया कि ठाकुर श्रीरामकृष्ण देव इस युग के वह अवतार पुरुष हैं, जो पतितों के उद्धार के लिए मनुष्य-शरीर धारण कर इस धराधाम में आविर्भूत हुए हैं।

लेखक-कुमुद बन्धु सेन से अपने विशेष साक्षात्कार में गिरीश घोष ने कहा – 'सब तरह का नशा करके देख लिया। वे सभी नशा कृत्रिम हैं, उत्तेजनामय हैं, नशा भंग होते ही मन अवसादग्रस्त हो जाता है, उस अवसाद को दूर करने के लिए शराब आदि द्वारा पुन: नशा करना पड़ता है, किन्तु भगवत्-प्रसंग में जो नशा तैयार होता है, वह बढ़ता ही जाता है, उसमें अवसाद का कोई स्थान नहीं है। उस आनन्द के नशे में मन सर्वदा परिपूर्ण रहता है। नहीं तो मैं कैसे शराब छोड़ता? अब ठाकुर की वाणी में जो आनन्द मुझे मिलता है, उससे किसी दूसरे नशे शराब-भाँग की क्या तुलना है?''

युवाओ, अधिकांश ऐसा सोचा जाता है कि केवल आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने के लिए ही सत्संग, साधु-संग इत्यादि की आवश्यकता होती है। किन्तु एक आनन्दमय, सम्मानमय, गौरवमय जीवन जीने हेतु भी सत्संग की अति आवश्यकता है। अत: सत्संग करके आप अपना जीवन आनन्दमय व्यतीत करें। ○○○

श्रीरामकृष्ण-गीता (२३)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के स्वामी कृष्णामृतानन्द जी ने की है। – सं.)

पादधावनयोग्यानि पेयजलानि कानि वा ।

मुख प्रक्षालनार्हानि यथास्पृश्यानि कानि च ।।४२।।

– जैसे किसी जल से पैर प्रक्षालन किया जाता है, किसी जल से मुख धोया जाता है, किसी जल को पीया जाता है और किसी जल का स्पर्श तक नहीं किया जा सकता है।

स्थानान्येव च सर्वाणि नाभिगम्यानि सर्वतः।

कानि गम्यानि हेयानि दुरान्नत्वाहि कानि वा ।।४३।।

– वैसे ही सभी स्थानों पर जाया नहीं जाता। किसी स्थान पर जाया जाता है और किसी स्थान पर दूर से भागना पड़ता है।

व्याघ्रेष्वपीश्वरः सत्यं न गन्तव्यं तदग्रतः ।

दुर्जनेष्वप्ययं सत्यं तेषां संगं तु मा क्रियात् ।।४४।।

– बाघ में भी ईश्वर हैं, किन्तु बाघ के सम्मुख नहीं जाना चाहिए। दुर्जनों में भी ईश्वर हैं, किन्तु दुर्जनों का संग नहीं करना चाहिए।

ज्ञेयो नारायणः सर्वमेवेति गुरुरेकदा ।

उक्त्वोपदिशे शिष्यं शिष्योऽप्यवगतस्तथा ।।४५।।

– एक दिन गुरु ने शिष्य को उपदेश देकर कहा – सबमें नारायण हैं। शिष्य ने भी वही समझा।

पथि मध्ये गजः कश्चिदगमदेकदा ततः।

तं तु द्रष्टुं जनः सर्वे समवेतास्तथाभवन् ।।४६।।

– एक दिन मार्ग में एक हाथी आ रहा था। उसे देखने के लिये लोग एकत्र होने लगे।

गजस्थं सन् गजारोहः हेतूच्चैरुदघोषयत् ।।

अपसरत यूयं भोः शिष्यस्तदेत्यचिन्तयत् ।।४७।।

– हाथी महावत ने जोर से कहा – 'दूर भाग जाओ।' तब शिष्य ने सोचा। **(क्रमशः)**

कविता

मैं गाऊँ श्रीरामकृष्ण का...

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा

मैं गाऊँ श्रीरामकृष्ण का, दिव्य मनोहर अनुपम गान।
हृदयकमल में सदा विराजित, त्रिगुणातीत परम भगवान ।।
निराकार-साकार रूपधर, सब भूतों में विराजमान ।
भक्तिसुधा का वितरण करने, जग में आये कृपानिधान ।।
करुणाविगलित होकर जग में, करते हैं दुख-कष्ट-निदान।
सहज समाधि लीन होते हैं, तजकर नाम-रूप का ज्ञान ।।
चित्त समाहित ब्रह्मत्तत्व में, देह व्यस्त है जनकल्याण ।
रामकृष्ण प्रभु के चरणों में, सदा समर्पित मेरे प्रान ।।

ढाई आखर बानी

आनन्द तिवारी 'पौराणिक'

जात, धरम, पर लड़त-मरत, ये कैसी नादानी।
एक ब्रह्म के अंश जीव सब, सकल जगत के प्राणी।।
पारस सा अमूल्य यह जीवन, फँसा विषय, मोह, अभिमानी।
गुरु की कृपा खुले ज्ञान-पट, सद्ग्रन्थों ने बखानी ।।
गूँगा गुड़ का स्वाद क्या बोले, भाषा बस मुस्कानी ।
प्यासा व्याकुल जल, नीर, पुकारे, प्यास बुझावे पानी ।।
रक्त, मांस का नश्वर यह तन, जाने संत, मुनि, ग्यानी।
संत कबीर की खंजड़ी बोले, ढाई आखर प्रेम की बानी ।।

योग के सभी आयामों की प्रकाशक है गीता

स्वामी गोविन्ददेव गिरि

श्रीमद्भगवद्-गीता योगशास्त्र है। इसका हर अध्याय योग है और गीतागायक श्रीकृष्ण भी योगेश्वर कृष्ण हैं। इसलिए 'योग दिवस' वास्तव में भगवद्गीता दिवस है। भगवद्गीता ने हमलोगों को जो योग के सोपान दिखाए हैं, वे मानव जीवन के लिए जितने परिपूर्ण हैं, उतने अन्य किसी भी ग्रंथ में उपलब्ध नहीं हैं। योग के ग्रंथों को देखते समय हम भगवान पतंजलि का नाम योगदर्शनकार के रूप में लेते हैं, जो सत्य भी है। हठयोग प्रदीपिका का नाम हम योग के दर्शन में लेते हैं; क्योंकि योग नाम से, जिन आसनों का परिचय होता है, वह पतंजलि के आसन नहीं हैं, वे हठयोग प्रदीपिका के आसन हैं। जिन क्रियाओं का वर्णन होता है, वे भी सारी क्रियाएँ घेरंड संहिता की हैं। इसलिए जब पूरा देश और देश के साथ सारा विश्व जब योग दिवस मना रहा है; तो कम से कम संत श्रीज्ञानेश्वर गुरुकुल के माध्यम से चलनेवाले गीता साधना शिविर के साधकों को भी तो इसका परिचय होना चाहिए कि यह योग क्या है और कहाँ से है?

योग के सभी आयामों की प्रकाशक है गीता

क्या आसन, प्राणायाम की क्रियाएँ ही योग हैं। योग के सभी ग्रंथ योग के कुछ अंगों पर प्रकाश डालनेवाले ग्रंथ हैं, लेकिन सम्पूर्ण जीवन को योगमय बनानेवाला ग्रंथ तो केवल भगवद्गीता ही है। ऐसा विचार जब मन में आता है और इस दृष्टि से जब भगवद्गीता की ओर देखा जाता है, तो एक बात बिल्कुल स्पष्ट होकर सामने आती है कि भगवद्गीता ने आरम्भ से लेकर अन्त तक सब कुछ हम लोगों को बतलाया है; लेकिन उस दृष्टि से देखने के लिए हमें श्लोकों का क्रम बदलकर अध्ययन-मनन करने की आवश्यकता है।

भगवद्गीता दो महान पुरुषों का संवाद है। यह कोई थीसिस नहीं है, प्रबंध नहीं है। संवाद में जैसे प्रश्न आते हैं, वैसे उत्तर चलते रहते हैं और उसमें भी यह दो सखाओं के मध्य का संवाद है, जिसमें कहीं प्रेम की बात आ गई तथा कई बातों का पुन: कथन भी हो गया। लेकिन जब हम भगवद्गीता के ही श्लोकों को एक अलग क्रम से समझकर देखने का प्रयास करते हैं, तो ध्यान में आता है कि भगवद्गीता हमलोगों को, हमारे पूरे जीवन का, जीवन की सिद्धि का, जीवन की सफलता का, परमात्मा के साथ मिलन का, मार्गदर्शन करने वाला ग्रंथ है। इतना ही नहीं, दूसरा कोई भी ग्रंथ ऐसा नहीं है, यह भी मुझे लगता है।

जो भगवद्-गीता में मिलता है, वह श्रीमद्भागवत में भी मिलेगा; लेकिन वह बात कुछ दूसरी हो जाएगी; क्योंकि श्रीमद्भागवत अत्यन्त विशाल ग्रंथ है। उस ग्रंथ की सारी कहानियों को समाविष्ट करके यदि हम देखना चाहेंगे, तो वह विषय ही बहुत बड़ा हो जायेगा। लेकिन गीता में किसी प्रकार की कथा-कहानी न होते हुए, केवल वैचारिक संवाद के रूप में, बहुत थोड़े समय में अर्जुन को निमित्त बना करके भगवान ने मानव-मात्र के कल्याण के लिये पूरा का पूरा मार्ग-दर्शन किया है। सारे जीवन का दिग्दर्शन करा दिया। कहाँ पहुँचना है, यह बताया और कैसे पहुँचा जा सकता है, इसका भी पूरा मार्गदर्शन किया। इसलिए यदि योग का पूर्ण वर्णन कहीं मिलता है, तो वह भगवद्गीता में मिलता है। इसलिए भगवद्गीता में हमलोग पूर्ण योग का दर्शन करते हैं। उसी का अवलोकन करने का प्रयास हम यहाँ कर रहे हैं।

योगेश्वर हैं श्रीकृष्ण

मनुष्य जीवन का विचार करते समय हम समाज को, परिवार को, समाज के अन्य अंगों को टाल करके विचार नहीं कर सकते। इन्हीं विचारों में यदि हम रात-दिन रहेंगे, तो अन्त:करण से अन्तरंग आत्मविकास नहीं कर सकते, जबकि करना तो सब कुछ चाहिए। भगवद्-गीता की विशेषता यह है कि ऐसा करने के लिये जो कुछ हमलोगों को 'योग' शब्द

के अन्तर्गत बतलाया गया, कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, ध्यानयोग, राजयोग, हठयोग, लययोग, मंत्रयोग ये सभी योग के अंग हमें इस लघुकाय ग्रंथ में मिलते हैं। इसका पूरा पारायण यदि आप ठीक से करना चाहें, तो केवल ४५ मिनट में पूरा हो जाता है। कुरुक्षेत्र के प्रांगण में भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन का यह केवल पैंतालीस मिनट का संवाद है, जिसमें सब कुछ आ गया। क्या सुना? संजय कहते हैं, मैंने अद्भुत संवाद सुना – **'संवादमिममद्भुतम्'** किस विषय का संवाद सुना – **'योगं।'** योग का सुना। किससे सुना? **योगेश्वरात्कृष्णात्'–** योगेश्वर कृष्ण से। यहाँ मुरलीधर कृष्ण नहीं, माखन-चोर कृष्ण नहीं, योगेश्वर कृष्ण हैं। ये योगेश्वर कृष्ण भी, अपनी एक विशिष्ट स्थिति में यह सारी बात बता रहे हैं। इसको भी ध्यान में रखना। सम्पूर्ण महाभारत में जहाँ कहीं भी भगवान कृष्ण बोलते हैं, वहाँ आता है 'वासुदेव उवाच', अर्थात् 'वसुदेव के पुत्र ने कहा'। केवल भगवद्गीता के अठारह अध्याय ऐसे हैं, जहाँ पर 'श्रीभगवान् उवाच' आया है। वेदव्यासजी महाराज भी हमारे ध्यान में ये बात ला देना चाहते हैं। इस प्रकार का अवलोकन अपने आप में, गीता को एक दूसरी ही दृष्टि से देखना है। सारे सिद्धान्त भी वे ही हैं, सारे शब्द भी वे ही हैं; लेकिन उनको अपनी आवश्यकता के अनुसार, जब हम अपने क्रम से ढालते हैं, तो एक मनोरम सुन्दर मार्ग हमारे सामने स्पष्ट हो जाता है।

कहीं से भी यात्रा का आरम्भ करना हो, पर सबसे पहले यात्रा कहाँ के लिए करनी है, यह स्पष्ट होना चाहिए। एक बात आप लोग अनुभव करेंगे कि भगवद्गीता का आरम्भ ही सबसे कठिन सिद्धान्त से हुआ है। यह हमारे प्राचीन ऋषियों की शैली है। सर्वोच्च सिद्धान्त को पहले बतलाना। आप यही बात सारे शास्त्रों में देखेंगे। ब्रह्मसूत्र की रचना हुई पाँच सौ पचपन सूत्रों में। भगवान वेदव्यासजी महाराज ने सारे प्रश्नों का सार निकाल करके दे दिया। लेकिन उस सार का भी सार पहले चार सूत्रों में दिया।

अथाऽतो ब्रह्मजिज्ञासा। जन्माद्यस्य यतः।
शास्त्रयोनित्वात्। तत्तु समन्वयात्।''

ये चार सूत्र ऐसे हैं, जिनको ठीक से समझनेवाला फिर अगले ब्रह्मसूत्रों को पढ़े चाहे न पढ़े। जो व्यक्ति उसको जानना चाहता है, जो उसके ध्यान में आना चाहिए, वह इन चार सूत्रों से भी आ जाता है। उसी प्रकार एक सौ बानबे योगसूत्रों में भगवान पतंजलि ने पहले तीन सूत्रों में ही वह सब कुछ बतला दिया, जो आगे चलकर के उन्हीं का स्पष्टीकरण करके बतलाता है। – **अथ योगानुशासनम्। योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। तदा द्रष्टुःस्वरूपेऽवस्थानम्। वृत्तिः सारूप्यमितरत्र।**

यदि पहले के तीन सूत्र ध्यान में आ गये, तो अगला सूत्र आप पढ़ें चाहे न पढ़ें। विशेष बात यह है कि पहले को साधनपाद कहा गया। अब उसमें जितना कुछ पतंजलि ने बतला दिया है, अगला आप पढ़ेंगे तो भी ठीक, नहीं पढ़ेंगे तो भी ठीक है। ग्रन्थ का उत्तरोत्तर विस्तार मंद अधिकारी के लिये होता है। उत्तम अधिकारी के लिए पहली बात बतला दी और बात पूरी हो गई।

सिंहमुखी गाय है गीता

इसी प्रकार भगवद्गीता में भी हम देखते हैं कि प्रारम्भ में इतना उच्च सिद्धान्त बतला दिया कि आगे चलकर भगवद्गीता आसान लगती है। लेकिन आरम्भ में वह सिंहमुखी लगती है। एक होती है सिंहमुखी गाय और एक होता है गोमुखी सिंह। आरम्भ में जो शास्त्र सरल लगता है और बाद में कठिन, उसे कहते हैं गोमुखी सिंह और जो शास्त्र आरम्भ में बड़ा कठिन लगता है, पर बाद में सरल हो जाता है, वह सिंहमुखी गाय है। श्रीमद्भगवद्गीता सिंहमुखी गोमाता हैं। आरम्भ में ही भगवान ने जो सिद्धान्त बतलाया, वह सिद्धान्त सामान्य बुद्धि से हमारे गले उतरने वाला लगता नहीं है। क्या बताया भगवान् ने? भगवान ने अर्जुन से आरम्भ में ही कहा, देखो अर्जुन ! तुम जो पश्चात्ताप कर रहे हो, यह व्यर्थ है। क्योंकि न तो कोई जन्म लेता है और न कोई मरता है। तुम मूलतः इन सब लोगों को मारोगे, ऐसा तुम्हें भ्रम हो रहा है। ये मरते-वरते कहाँ है? न तो कोई मरने वाला है और न कोई मारने वाला। भगवान यहाँ पर जो कुछ बतलाते हैं वह है –

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते।।
(गीता, २.१९)

आत्म-तत्त्व का परिचय

अर्जुन ! आत्मस्वरूप ऐसा है कि जो न जन्म लेता है, न मरता है और न मरता है, न किसी को मारता है। जो

शेष भाग पृष्ठ ३५३ पर

सारगाछी की स्मृतियाँ (१२७)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से २०२२ तक अनवरत प्रकाशित हुआ था। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

महाराज – मेरे स्नायु इतने दुर्बल हो गए हैं कि अकेले रहने से भय होता है। एक-आध घण्टे के लिए भी (किसी का संग) नहीं छोड़ सकता हूँ। बिल्कुल छोटा बच्चा हो गया हूँ। सम्भवत: होम्योपैथी में इसका लक्षण उपलब्ध है।

माधवानन्द महाराज – हाँ, उन सबका एक तरह का है। स्नायु-समूह दुर्बल हो जाते हैं। मैं एक बार स्टीमर से जा रहा था। मेरी सीट के ऊपर की सीट पर एक व्यक्ति सोते समय तेज रोशनी जलाकर रखे हुए थे। उन्होंने बताया कि प्रकाश नहीं रहने से उन्हें भय लगता है। मुझसे उन्होंने पूछा कि मुझे कोई असुविधा तो नहीं होगी। मैंने कहा नहीं, नहीं, आँखें बन्द करके रहने से ही मेरा काम हो जाएगा। पता नहीं, उनकी कैसी अवस्था थी ! स्नायु-समूह कितने कमजोर थे !

प्रेमेश महाराज – उस घर में तो भट्टाचार्य महाशय रहते हैं – सुना है, उनकी स्थिति तो मुझसे भी अधिक खराब है।

माधवानन्द महाराज – हाँ, बैठ ही नहीं सकते। बड़ी दुखद स्थिति है। पकड़कर बैठाने पर कुछ समय बाद ही बैठ सके। देखने से लगा कि जीवित रहने में बहुत कष्ट है। मानो मरने से भी अधिक कष्टकर है। वृद्धावस्था में सबको ही कष्ट भोगना होगा, सभी लोग जानते हैं। यही नियम है, फिर भी कष्ट होता है। स्वस्थ न रहकर वृद्धावस्था तक जीवित रहना बड़ा कष्टकर है।

प्रेमेश महाराज – (बुद्ध महाराज की ओर देखकर) इनके सिर पर तो एक कार्यभार के ऊपर दूसरे कार्य का बोझ आ गया है। इतना बड़ा अस्पताल चलाना पड़ता है।

माधवानन्द महाराज – क्यों? वे लोग यह सब कुछ भी नहीं सोचते। अनेक प्रकार के रोगियों के आने के लिये ही तो अस्पताल बनाया है। यही तो उनका कार्य है।

हमलोगों ने देखा है – **राहत कार्य में जाने पर लोग हमसे बड़ा दावा (अपेक्षा) करते, चाहते थे कि वही तो हमारा कार्य है, उनकी अपेक्षा तो हमारा अधिकार है।**

प्रेमेश महाराज – इतने दिनों तक मुझे अस्पताल में रखा था। अब नाम काट दिया है।

बुद्ध महाराज – नाम काटने का अभिप्राय ! अस्पताल एकदम से ऊपर उठ गया। (अस्पताल का नवीन भवन हो गया।)

माधवानन्द महाराज – नाम काटने की बात से शशी महाराज से सम्बन्धित घटना याद आ गई। मिशन की रजिस्ट्री कराई गई थी। यह तय हुआ कि मठ के सभी साधुओं का नाम सूचीबद्ध किया जाएगा। शशी महाराज को यह बात न बताकर फार्म भेज दिया गया, ताकि वे उस पर हस्ताक्षर कर दें। उन्होंने उस पर हस्ताक्षर करके यह शिकायत करते हुए भेजा, 'मेरा नाम मठ से काट दिया?' वे यह नहीं समझ सके कि यहाँ के सदस्य तो थे ही, अब मिशन के भी हो गए। अखण्डानन्दजी ने राहत कार्य किया।

महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) – बोले, ''मोटे तौर पर हिसाब दो। एक रिपोर्ट बनाकर प्रकाशित करता हूँ। लोगों से चंदा संग्रह करके पुन: तेज गति से राहत कार्य किया जाएगा।'' अखण्डानन्द महाराज को दर्शन हुआ, उन्होंने देखा कि ठाकुर कह रहे हैं – ''तुम मुझे चाहता है कि यश, मान, लोकप्रसिद्धि, धन चाहता है?'' सभी चीजों के प्रति महापुरुषों का दृष्टिकोण ही अलग तरह का होता है।

प्रेमेश महाराज – और क्या किया जाएगा। किन्तु लोगों का धन नष्ट होता है, यही दुख है। ठाकुर के शरणागत होना और उनकी इच्छानुसार चलने के अलावा उपाय ही क्या है?

माधवानन्द महाराज – मुख देखने से तो ऐसा लगता

ही नहीं कि आप अस्वस्थ हैं, आप केवल एक वृद्ध प्रतीत होते हैं।

२ नवम्बर, १९६३, शनिवार – सुबह शरीर आदि के कुशल-क्षेम पूछने के बाद।

प्रेमेश महाराज – ये लोग आपकी कुछ बातें जानना चाहते हैं, क्या लेकर रहना है। आप लोगों की बातें कहने से सुख प्राप्त होता है।

माधवानन्द महाराज – तब तो कहने के लिए कुछ भी नहीं मिलेगा। वह सब अच्छा नहीं। अपनी-अपनी गुरुपूजा ठीक नहीं। इसीलिए अखण्डानन्द महाराज ने 'भगवान श्रीरामकृष्ण देव की जय' आरम्भ किया।

हमने कहा है कि वर्ष १९६४ में महाराज परिवेश के सम्बन्ध में थोड़ा-थोड़ा सजग हो रहे थे। उस समय मैंने डायरी में दिनांक सहित दो-चार बातें लिख रखी थीं। उसमें कुछ-कुछ आवश्यक तत्त्व और तथ्य थे। पहले का लिखित होने पर भी यह इस समय प्राप्त हुआ है।

२६-०६-१९६५

महाराज – तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान इन तीनों को समान रूप से नहीं करते रहने से पतन अवश्यमेव होगा।

वर्ष १९६२ के अगस्त मास के बाद डायरी में बहुत दिनों तक कुछ नहीं लिखा गया था। उस समय एक तूफान की तरह कुछ रोगों ने आकर प्रेमेश महाराज के शरीर को अस्त-व्यस्त कर डाला था। कई बार मरणासन्न जैसी अवस्था हो गयी थी। तथापि इसमें ही एक-दो विद्युत की झलक दिखती है।

महाराज की शारीरिक अस्वस्थता का कुछ आभास शायद सेवक समझ रहा था। उसका मन उस समय विचलित था। शायद वह अन्दर ही अन्दर सोचता था कि महाराज के शरीर-त्याग के बाद वह स्वाधीन रूप से परिव्राजक रूप में भ्रमण करेगा। उसका हाव-भाव देखकर महाराज को सन्देह हुआ। उसे एक दिन बुलाकर महाराज ने कहा, ''कागज और कलम लेकर आओ।'' सेवक ने सोचा कि शायद महाराज किसी को पत्र लिखेंगे। वह तैयार होकर आया। महाराज ने उसे निम्नलिखित बातें लिख लेने को कहा – ''यह तुम्हारे जीवन भर के लिए है।'' दीर्घकाल बीतने के बाद इसे पढ़ने पर लगा कि यह तो अभी साधु भाइयों के लिये भी प्रयुक्त है। उस दिन महाराज ने सेवक को ऐसा लिखवाया था –

।। श्रीरामकृष्ण।।

२१-०७-६२

तुम्हारे जीवन में चाहे जितनी भी दुख-दुर्दशा क्यों न आए, तुम रामकृष्ण संघ का आश्रय लेकर पड़े रहो। हमारे किसी भी संस्थान में रहकर स्वामीजी के आदेश के अनुसार ज्ञान-कर्म-भक्ति-योग की समन्वित साधना का अवलम्बन करके जीवन बिताओ।

संघ का सर्वतोभावेन आश्रय लेना होगा। भोजन और निवास हेतु अन्यत्र कहीं जाने से काम नहीं चलेगा। विशेष कारणवश तीर्थाटन अथवा निर्जनवास हेतु कुछ समय तक बाहर रहने में कोई बाधा नहीं है। किन्तु संघ के लिये आवश्यक होने पर उन सभी कार्यों को स्थगित रखना होगा। अकाल, महामारी या कोई विशेष सेवा-कार्य के समय कुछ समय तक पाठ, जप आदि बन्द रखने में संकोच मत करना। बहुत आवश्यक होने पर एक वर्ष तक इसी तरह रहा जा सकता है। हजारों प्रकार के कर्मों के बीच रहने पर भी ज्ञान, कर्म, भक्ति, योग के सम्बन्ध में सजग रहना होगा।

प्रेमेश महाराज अन्तिम समय में सेवक के भविष्य के सम्बन्ध में बहुत ही उद्विग्न रहते थे। एक दिन सेवक ने मजाक करते हुए कहा, 'महाराज; आप ही तो मेरे सेवक हैं।'

महाराज – कैसे?

सेवक – मैं आपके स्थूल शरीर की सेवा करता हूँ और आप तो मेरे सूक्ष्म शरीर की सेवा कर रहे हैं।

महाराज – यदि ऐसा समझ रहे हो, तो अच्छा है।

पुराने कागजों के बीच डायरी का यह अंश सम्प्रति प्राप्त हुआ है। हमने इसे यहीं लिख दिया।

२७-०६-१९६४

महाराज – ठाकुर और गुरु के चित्र को सदैव आँखों के सामने रखने से कभी पतन नहीं होता।

२८-०६-१९६४

रात में, सुनील महाराज एक पैसा मिलने पर उसे उठाकर ठाकुर को देंगे, ऐसा सुनकर **महाराज ने कहा** – 'उड़ो खै गोविन्दाय नमः'। यह पैसा ठाकुर के भोग में नहीं लगेगा।

२-०७-१९६४

छोटे हरिदास के बारे में प्रेमेश महाराज बोले – जो

शेष भाग पृष्ठ ३५६ पर

श्रीरामकृष्ण का आकर्षण

स्वामी अलोकानन्द, रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

अनुवाद – अवधेश प्रधान, वाराणसी

(गतांक के आगे)

श्रीरामकृष्ण की लीलादेह लोप हो जाने के बाद भी सुरेन्द्र के जीवन में यह आकर्षण बेरोक-टोक चलता रहा। काशीपुर का मकान छोड़ देना पड़ा था। अनेक त्यागी शिष्य, जिनका कोई आश्रय न था, उस समय तीर्थ आदि में रह रहे थे। शेष सभी शिष्य मन में अन्त: संघर्ष लिए अपने अपने घर दिन बिता रहे थे। इसी समय एक दिन ऑफिस से लौटकर सुरेन्द्र ने पूजाघर में एक दिव्य दर्शन प्राप्त किया। देखा कि श्रीरामकृष्ण देव आविर्भूत होकर कह रहे हैं, ''तू कर क्या रहा है? मेरे बच्चे सब इधर-उधर भटक रहे हैं, पहले उनके लिये कोई व्यवस्था कर।''[१०१] सुनते ही सुरेन्द्र तत्काल उन्मत्त के समान दौड़ते हुये अपने ही मुहल्ले में रहनेवाले नरेन्द्र के घर पर पहुँचे और उन्हें सब कुछ कह सुनाया। फिर वे अश्रुसिक्त कण्ठ से बोले – ''भाई, एक जगह ठीक करो, जहाँ ठाकुर का चित्र, भस्म-अस्थियाँ तथा उनकी व्यवहृत चीजें रखकर विधिपूर्वक पूजा-अर्चना हो, जहाँ तुम काम-कांचनत्यागी भक्तगण एक साथ रह सको। बीच-बीच में हम लोग भी वहाँ आकर शान्ति पायेंगे। मैं काशीपुर में प्रतिमास जो रुपये दिया करता था, यहाँ भी उसी तरह देता रहूँगा।''[१०२]

अन्त में सुरेन्द्र की आर्थिक सहायता और नरेन्द्र की प्रचेष्टा से १८८६ ई. में आश्विन मास के अन्त में रामकृष्ण मठ का शुभारम्भ वराहनगर में हुआ। इसी मठ की प्रशंसा में मास्टर महाशय ने 'धन्य सुरेन्द्र' कहकर सुरेन्द्रनाथ के प्रति श्रद्धा व्यक्त की थी। गंगा के किनारे मठ-भूमि निर्माण के लिए मृत्यु के पहले उनके द्वारा दिए गए दान की बात का स्मरण करके स्वामीजी ने एक पत्र में उनकी महाप्राणता का उल्लेख किया है, पूर्वोक्त दो महात्माओं (सुरेन्द्र और बलराम) की नितान्त इच्छा थी कि गंगा के किनारे जमीन खरीदकर उनकी (श्रीरामकृष्ण की) अस्थियों को समाहित किया जाये और सुरेश बाबू (सुरेन्द्र) ने उसके लिए १००० (एक हजार) रुपया दिया है और कहा है कि वे और भी रुपया देंगे।''[१०३]

श्रीरामकृष्ण के अनुपेक्षणीय आकर्षण ने सुरेन्द्र के जीवन में एक अकल्पनीय परिवर्तन किया।

बलराम बसु

प्रात: स्मरणीय कृष्णराम बसु के वंशज बलराम बसु श्रीक्षेत्र पुरीधाम में निवास करते थे। बचपन से ही भगवदभक्ति परायण थे और साधुसंग में जीवन यापन करते थे। तब भी मन में शान्ति नहीं थी। इसी समय केशवचन्द्र सेन का लेख पढ़कर उन्हें दक्षिणेश्वर के श्रीरामकृष्ण परमहंस नाम के महात्मा के बारे में पता चला। दर्शन करने की इच्छा हुई। सुअवसर की प्रतीक्षा करने लगे। इसी समय मित्रवर रामदयाल बाबू की एक चिट्ठी मिली। वे कलकत्ता जाएँगे और नित्य श्रीरामकृष्ण देव का सत्संग और उनके वचनामृत का पान करने का अवसर मिलेगा। इस आनन्द में अपने मित्र को सहभागी न बना पाना, उनके लिए सम्भव नहीं है। इसीलिए अविलम्ब कलकत्ता आने का आमंत्रण उन्होंने दिया। विधि के विधान से इसी समय बलराम बसु को किसी कार्यवश कोलकाता जाने की जरूरत आ पड़ी। कोलकाता में उन लोगों का आवास रमाकान्त बसु स्ट्रीट में था। कोलकाता पहुँचने के अगले ही दिन दक्षिणेश्वर की यात्रा हुई।

बलराम बसु

उस दिन केशवचन्द्र सेन का मूड़ी (भूंजा) खाने का निमंत्रण था कमरा लोगों से भरा था, उन्हीं के बीच बलराम बसु जाकर श्रीरामकृष्ण देव को प्रणाम करके एक ओर बैठ गए। क्रमश: मूड़ी खाने की बुलाहट पर सबके चले जाने पर बलराम को पास बुलाकर श्रीरामकृष्ण देव ने प्रश्न किया, ''तुम्हारी क्या बात है, बोलो।''

बलराम : ''महाशय, क्या भगवान हैं?''

श्रीरामकृष्ण : ''हाँ, भगवान तो हैं ही।''

बलराम : ''तो फिर उनका दर्शन होता है क्या?''

श्रीरामकृष्ण : ''उनको अपना समझकर पुकारने पर वे दर्शन देते हैं। एक पुकार पर दर्शन न मिले, तो यह नहीं समझना कि वे नहीं है। दिन में तारे नहीं दिखाई देते, तो क्या कह सकते हो कि आकाश में तारे नहीं हैं।''

बलराम : ''तो फिर उनको पुकारता हूँ, लेकिन उनके दर्शन नहीं होते, क्यों?''

श्रीरामकृष्ण : ''अपनी संतान के प्रति जैसा मन का अपनापन है, उनको उसी प्रकार अपना समझकर पुकारते हो क्या?''

बलराम : ''जी नहीं, वैसा समझकर उनको नहीं पुकारता।''

श्रीरामकृष्ण : ''अपनों से भी अपना समझकर उनको पुकारो, निश्चयपूर्वक कहता हूँ, वे भक्तवत्सल हैं, दर्शन दिए बिना रह नहीं सकते। मनुष्य उनको पुकारे उससे पहले ही वे आगे बढ़कर आ जाते हैं। मनुष्य यदि ईश्वर की ओर एक कदम आगे बढ़ाता है, तो वे दस कदम आगे बढ़ आते हैं। उनसे बढ़कर अपना और कोई नहीं।''[१०४]

श्रीरामकृष्ण के साथ इस प्रथम साक्षात्कार ने बलराम के जीवन के सभी संशय और हताशा को दूर करके उसी समय दिशा-निर्देश कर दिया। वे सोचने लगे, ''ऐसी बात तो पहले कभी नहीं सुनी। वे इतने आत्मीय हैं, उनसे बढ़कर अपना और कोई नहीं ! फिर भी इतने दिन से उन्हीं को भूले हुए था ! मनुष्य उनको पुकारे उससे पहले ही वे आगे बढ़ आते हैं ! जीव के प्रति उनकी इतनी दया है, तो जीव के लिए वे देह धारण करते हैं। फिर ये ही कौन हैं? कितने आश्चर्य की बात है, इन्हीं को मन में उस परम दयालु ईश्वर के रूप में क्यों अनुभव कर रहा हूँ? इन्हीं को तो देख रहा हूँ, पुकारने से पहले ही आगे बढ़े आ रहे हैं। फिर मेरे प्राण तो इन्हीं को महाआत्मीय कह रहे हैं।''[१०५]

बलराम बसु के 'जीवन का ध्रुवतारा' निश्चित हो गया। मुग्ध चित्त से प्रणाम करके उस दिन उन्होंने विदा ली। श्रीरामकृष्ण देव ने भी 'फिर आना' कहकर विदा दी। बलराम ने कहा, ''जी हाँ, बिलकुल आऊँगा।'' और मन ही मन सोचा, ''रात बीतते ही आऊँगा, और कहाँ जाऊँगा, रोज आऊँगा।''[१०६]

अगले दिन वे दक्षिणेश्वर में फिर उपस्थित हुए। श्रीरामकृष्ण देव न उनको देखते ही सादर आह्वान करते हुए कहा, ''तुम आए हो, अच्छा हुआ। बैठो, सुस्ता लो। तुम्हारी ही बात याद आ रही थी। घर कहाँ है?''

बलराम : जी, बागबाजार में।''

श्रीरामकृष्ण : ''इतना लम्बा रास्ता पैदल चलकर आए हो?''

बलराम : जी हाँ।''[१०७]

कुछ बातचीत के बाद श्रीरामकृष्ण देव ने उनसे कहा, ''सुनो जी, माँ ने कहा है, तुम अपने जन हो; तुम माँ के एक रसददार हो, तुम्हारे घर में यहाँ का बहुत जमा है। कुछ खरीद कर भेज देना।'' बलराम ने हाथ जोड़कर कहा, ''जी, हाँ।[१०८]

बलराम के चिन्तन में उस समय एक ही नाम था – 'श्रीरामकृष्ण', भावना में एक ही मूर्ति थी – 'श्रीरामकृष्ण'। हमेशा यही सोचते रहते थे, ''ये कौन हैं? इतना मीठा व्यवहार कहीं किसी मनुष्य का तो देखा नहीं। कितने देशों-प्रदेशों में, कितने अनगिनत साधु देखे, कितने योगी, कितने महंत देखे, यह भाव तो कहीं नहीं देखा। फिर चैतन्य महाप्रभु की तरह भाव-समाधि भी बार-बार होती है। इतने अनंत ईश्वरीय भाव भी तो किसी के नहीं देखे। नहीं, मनुष्य नहीं हैं, मनुष्य नहीं हैं, ये तो वही महाप्रभु ही उदय हुए हैं। ... यह सब उन्हीं की लीला है। कितने जन्मों के पुण्य-फल से आज भगवान के दर्शन पाए। इसलिए यह बात बिलकुल ठीक है, वे दस कदम आगे भी आते हैं, यदि मनुष्य एक कदम उनकी ओर आगे बढ़े। यही तो वे आगे आकर बैठे हैं और मानो हमारे लिए प्रतीक्षा कर रहे हैं।''[१०९]

लेकिन संशय नहीं जाता। विश्वास के ऊपर संशय-मेघ आकर ढक देता है। अच्छी तरह देखकर, समझ कर निर्णय करना होगा। इसी प्रकार डाँवाडोल स्थिति में बलराम कुछ द्रव्य आदि संग्रह करके एक दिन दक्षिणेश्वर में उपस्थित हुए। साधु ने कहा है, ''खाली हाथ दर्शन नहीं करना चाहिये। तुम्हारे घर में यहाँ का बहुत जमा है। कुछ खरीद कर भेज देना।'' आकर देखा कि श्रीरामकृष्ण उन्हीं के लिए पैर बढ़ाकर प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनको देखकर आनंदपूर्वक बुलाया और सारी वस्तुएँ उठाकर रखने का आदेश देते हुए बोले, ''ओ हृदू, यह वही चैतन्यदेव की कीर्तन-मंडली का आदमी है, इन्हीं सब को देखा था, तुझको याद है? वे सभी फिर आएँगे, वही एक आदमी आया है। इसलिए वे जो अन्न लाए हैं, वह बड़ा पवित्र अन्न है।''[११०]

दो और दो मिलकर चार हो गए। बलराम श्रीरामकृष्ण

के 'रसददार' और 'अपने आदमी' हो गए। इतने दिन एक जन दक्षिणेश्वर में माँ के साथ एकात्म हो गए थे, उधर एक और जन थे, जो पुरी में उसी समय नाना स्थानों में 'जीवन के ध्रुवतारा' को ढूँढ़ते घूम रहे थे। चुम्बक और लोहे में परस्पर आकर्षण चल रहा था। अब मिलन हो गया। यह मिलन अंतरंग मिलन है, भगवान और भक्त का मिलन है। इसीलिए श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं, ''बलराम का शुद्ध अन्न है, उनके पूर्वजों से ही ठाकुरसेवा और अतिथि-फकीरों की सेवा का क्रम चल रहा है। उसके पिता सब कुछ त्याग करके वृन्दावन में रहकर हरिनाम कर रहे हैं। उसका अन्न मैं खा सकता हूँ, मुँह में डालते ही मानो अपने आप गले के नीचे उतर जाता है।''[१११]

श्रीरामकृष्ण के आकर्षण की दृढ़ता कैसी थी यह हम उत्तरकाल में बलराम बाबू के परिवार के साथ उनके संपर्क से समझ सकते हैं। श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर को 'माँ काली का किला' कहते हैं। लेकिन कार्य की सफलता के लिए कलकत्ता में एक और किले की जरूरत थी। रमाकान्त बसु स्ट्रीट में स्थित बलराम बसु का घर ही उनका 'दूसरा किला' हुआ। वहीं भक्त-समागम, वहीं अन्न-ग्रहण, वहीं कीर्तन और भाव में एक चहल-पहल भरा परिवेश, वहीं जगन्नाथदेव के रथ को खींचने को उपलक्ष्य करके नए-नए भावों का विकास, फिर स्थूल लीला के अप्रकट होने के बाद पवित्र अस्थि का कुछ दिनों तक अवस्थान और पूजन-अर्चन हुआ, वहीं भावी रामकृष्ण मठ के पुरोधा संन्यासियों का निवास और साधना-कुटीर हुआ। अन्त में १८९७ ई. की १ मई को यहीं विश्ववरेण्य स्वामी विवेकानन्द द्वारा रामकृष्ण मिशन का शुभारम्भ हुआ। इस प्रकार श्रीरामकृष्ण के आकर्षण से पुरीधाम से बलराम का कलकत्ता में आगमन रामकृष्ण संघ के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना है। वचनामृत के लेखक ने बिलकुल सही लिखा है, ''धन्य बलराम ! तुम्हारा ही घर आज ठाकुर का प्रधान कर्मक्षेत्र हो गया है। कितने नए-नए भक्तों को आकर्षण करके प्रेमडोर में बाँधा, भक्तों के साथ कितना नृत्य किया, गाया ! मानो श्रीगौरांग चैतन्य देव श्रीवास मन्दिर में प्रेम की हाट लगा रहे हैं !''[११२]

''दक्षिणेश्वर के कालीमंदिर में बैठे-बैठे रोया करते, अपने अंतरंगों से मिलने को व्याकुल रहा करते ! ...माँ से कहते, ...''यदि वह नहीं आ सकता, तो फिर माँ मुझे ही वहाँ ले चलो।'' ... इसीलिए बलराम के घर पर हमेशा आते हैं। ...यों ही निमंत्रण देने को बलराम को भेजते। कहते, 'जाओ – नरेन्द्र को, भवनाथ को, राखाल को निमंत्रित करके आओ।'' ...यहीं कितनी बार 'प्रेम के दरबार में आनंद का मेला' हुआ है।''[११३]

बलराम के इस घर में श्रीरामकृष्ण स्थूल शरीर में सौ से अधिक बार पदार्पण करके अपने दैवी आकर्षण का ऐसा विस्तार कर गए हैं कि आज भी वह 'बलराम मन्दिर' नाम से भक्तों के मन में परम प्रेरणास्थल होकर प्रतिष्ठित है। हम भी भूमिष्ठ होकर इस घर को तथा भक्तप्रवर बलराम बसु को प्रणाम करते हैं।

वैकुंठनाथ सान्याल

नदिया जिले के बेलापुकुर गाँव में दीनानाथ सान्याल के पुत्र रूप में वैकुंठनाथ का जन्म हुआ था। बचपन से ही उनमें धर्म के प्रति आकर्षण था। इसीलिए धार्मिक लोगों के पास जाकर धर्म सम्बन्धी चर्चा इत्यादि करते थे। लेकिन प्राणों को तृप्ति नहीं होती। सर्वत्र धर्म की आड़ में धोखा और पाखंड का प्रपंच देख-देखकर विरक्ति हो गई और उनकी यह धारणा हो गई कि ''धर्म-राज्य में सर्वत्र ही धोखाधड़ी, धांधली और छल-कपट है।''

वैकुंठनाथ सान्याल

ऐसी ही अवस्था में उनको अपने एक परम आत्मीय वेदान्तवेत्ता धर्माचार्य से दक्षिणेश्वर के परमहंस के बारे में पता चला। उन्होंने कहा, ''मैं भी जब तुम्हारी तरह प्राय: नास्तिक होकर संसार में पूरी तरह डूबा हुआ था, उसी समय यहीं कलकत्ता के पास दक्षिणेश्वर में रासमणि की कालीबाड़ी में एक महापुरुष का पुण्य दर्शन मुझे प्राप्त हुआ। उनका नाम है रामकृष्ण परमहंस। मेरी क्षुद्र बुद्धि में तो उनके बारे में एक अवतार-तुल्य व्यक्ति की धारणा हुई है। यदि धर्म के बारे में जानना चाहते हो, तो उन्हीं महापुरुष के पास जाओ, तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा।''[११४]

वैकुंठनाथ को यह बात सुनकर भी फिर ठगे जाने के भय से जाने की इच्छा नहीं हुई। तो भी उनके बारे में खोज-खबर लेने लगे। बाद में मन में आया, यहाँ कुछ सार-तत्त्व है, तभी तो ऐसा हो सकता है। फिर भी अपनी आँखों देखने की इच्छा हुई। ''इसी प्रकार सोचते-विचारते हुए एक दिन

परमहंस देव की एक प्रिय संतान (स्वामी प्रेमानन्द) के साथ दक्षिणेश्वर में उनके दर्शन को गए। लेकिन उस पवित्र मूर्ति का दर्शन करके जीवन इतनी दूर तक परिवर्तित हो जाएगा, यह बात सपने में भी नहीं सोची थी।''[११५]

वैकुंठनाथ प्रथम दर्शन में ही श्रीरामकृष्ण के प्रति आकृष्ट हो गए थे। उनकी आपबीती उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है, ''मैंने एक अद्भुत मनुष्य देखा – वयस्क होने के बावजूद बालक जैसा स्वभाव ! लाल गुलाबी होंठ और भाव में डूबे हुए दो नेत्र, मुखमंडल पर सुन्दर ज्योति, मानो आनन्द घन मूर्ति। सोचा कि ये क्या वही पुरुष हैं अथवा उस पुरुष के निरंतर चिन्तन में अपने आप को भूलकर ये इस प्रकार आनंदसागर में निमग्न हो रहे हैं और बीच-बीच में ऊपर आकर खेल कर रहे हैं? मनुष्य होकर भी क्या ही अमानुष भाव है, संसार में रहकर भी यह क्या ही संसार-मुक्त भाव है ! जन्म से ही अपनी वंश मर्यादा, अपनी विद्याबुद्धि, जो कुछ अपना है, उस सब कुछ को बड़ा देखना ही सीखा था, अन्तर की श्रद्धा-भक्ति के साथ आज तक किसी को भी प्रणाम किया है कि नहीं, याद नहीं आता, लेकिन श्रीरामकृष्ण का यह अदृष्टपूर्व रूप और भाव देखकर अहंकार सौ टुकड़े हो गया, प्राण और मन मोहित हो गया, उनको अपने से भी अपना अनुभव करने लगा, विचार-बुद्धि जाने कहाँ पलायित हो गई। पतिंगा जिस तरह रूप देखकर पागल होकर आग में कूद पड़ता है, मेरे मन की भी वही दशा हो गई और साथ ही साथ मेरा गर्वित मस्तक उनके आलोकमय चरणों में नत हो गया। क्या कर रहा हूँ, यह जानने के पहले ही उनको प्रणाम कर डाला और प्रभु ने भी अत्यन्त आदर के साथ मुझको अपने सम्मुख बैठने को कहा।

''मैं बैठा। वह दिव्य मूर्ति देखते-देखते सोचने लगा, ये मुझको इतना आदर क्यों दे रहे हैं? मैं नास्तिक हूँ – संशयात्मा। इनके पवित्र प्रेम के योग्य कैसे हो गया अथवा प्राणों की व्याकुलता से जो इतने दिनों तक भटकता रहा हूँ, कहीं आश्रय नहीं मिला, यह बात क्या ये समझ गए हैं? मेरा दुख समझकर ही इतनी दया कर रहे हैं ! संसार की कोई घटना जब बिना किसी कारण के नहीं होती, तो फिर इस ज्योतिर्मय प्रेमघन मूर्ति के प्रकाश का भी विशेष कारण निश्चय होगा। मेरे जैसे रोते-भटकते मनुष्य को संदेह-सागर से उठाकर धर्म के उज्ज्वल पथ और आदर्श को दिखाना ही क्या इनके आविर्भाव का कारण है? इस प्रकार के विचार मन में उभरने लगे और उस श्रीमुख की बातें जितनी ही सुनने लगा, उतना ही उनकी ओर आकृष्ट और मोहित होता गया। कहाँ, कब, किस तरह वह दिन बीत गया, पता भी न चला। दिन का अन्त होने पर उन्हीं का ध्यान करते-करते, उनकी मीठी बातें और अपूर्व आदर-पल के बारे में सोचते-सोचते घर लौटा। विदा होते समय उन्होंने अपने यहाँ पुन: आने का जो विशेष अनुरोध किया, उसे याद करके प्राणों में अपार आनन्द होने लगा।''[११६]

वैकुंठनाथ के जीवन में कितनी दूर तक परिवर्तन हुआ था, यह उनके उत्तरवर्ती जीवन को देखने से समझा जा सकता है। उस दिन से उनका सम्बन्ध घनिष्ठतर होता गया। समय मिलते ही वे श्रीरामकृष्ण के पास आते और धर्मजीवन के तथ्यों के बारे में जानकारी प्राप्त करते। केवल जानकारी प्राप्त करने ही नहीं, अपने जीवन में साधना के द्वारा उसको आयत्त करने के लिए भी वे सक्रिय हुए। श्रीरामकृष्ण-गतप्राण वैकुंठनाथ को हम स्वामी सारदानन्द के साथ उत्तराखण्ड में तपस्या निरत देखते हैं। परवर्ती काल में संन्यास ग्रहण करने के बाद उनका नाम हुआ 'स्वामी कृपानन्द'। शेष जीवन उन्होंने उत्तराखण्ड में ही तपस्या में बिताया। 'श्रीरामकृष्ण लीलामृत' नाम से एक तथ्यपूर्ण ग्रंथ की भी रचना की। इसके अतिरिक्त श्रीरामकृष्ण-विषयक अनेक लेख 'उद्बोधन' और 'वसुमति' में प्रकाशित करके अपनी व्यक्तिगत अभिज्ञता को अभिव्यक्ति दी। श्रीरामकृष्ण के बारे में उनका चरम मन्तव्य इस प्रकार है, ''अनन्त धर्मसमन्वय के विग्रह अनन्त भावों के सागर-संगम सदृश श्रीरामकृष्ण देव की इयत्ता मैं नगण्य कैसे करूँगा ! अब आइए, सभी मिलकर उनके चरणों में प्रणत होते हैं और उन्हीं की शक्ति से नव प्राण प्राप्त करके उच्च स्वर से घोषणा करते हैं – जय हिन्दू, क्रिश्चियन, मुसलमान, बौद्ध आदि सभी धर्मों की जय ! जय वेद, बाइबल, कुरान, पुराण समस्त शास्त्रों की जय ! जय ज्ञान, भक्ति, योग, कर्म आदि चतुस्पथ की जय ! जय सभी देशों के, सभी कालों के सभी अवतारों की जय ! जय सभी धर्मों, सभी भावों, सभी अवतारों की घनीभूत प्रतिमा स्वरूप भगवान श्रीरामकृष्ण की जय ![११७] **(क्रमशः)**

सन्दर्भ सूची – १०१. भक्तमालिका, भाग-२, पृ. २७३ **१०२.** वही **१०३.** पत्रावली, स्वामी विवेकानन्द, पत्र सं. ५१ **१०४.** श्रीरामकृष्ण चरित, पृ. १९५-९६ **१०५.** वही, पृ. १९६ **१०६.** वही, पृ. १९७ **१०७.** वही **१०८.** वही **१०९.** वही, पृ. १९८ **११०.** वही, पृ. १९९ **१११.** भक्तमालिका, भाग-२ पृ. १९७ **११२.** कथामृत, पृ. ८८७ **११३.** वही **११४.** श्रीरामकृष्ण के जेरूप देखियाछि, पृ. ३०७-०८ **११५.** वही **११६.** वही, पृ. ३०७-०८ **११७.** उद्बोधन, सप्तम वर्ष

रामराज्य का स्वरूप (९/१)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्‌घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं।।
७/२१/०

श्रद्धेय स्वामीजी महाराज, उपस्थित बन्धुओ और देवियो, पिछले आठ दिनों से रामराज्य के सन्दर्भ में कुछ सूत्र आपके समक्ष प्रस्तुत किए जाते रहे हैं। इसी सन्दर्भ में स्वामीजी के द्वारा कथा का सार-संक्षेप भी आपको मिलता रहा है। आइए, उस क्रम परम्परा को आज और कल जो बचे हुए दिन हैं, उसमें पूरा करने की चेष्टा करें।

उत्तरकाण्ड में रामराज्य की जिन विशेषताओं का वर्णन किया गया है, वे विशेषताएँ पढ़ने में तो अत्यन्त आकर्षक प्रतीत होती हैं। प्रत्येक व्यक्ति को ऐसा लगता है कि यदि हमारे जीवन में या समाज में ऐसे राज्य की स्थापना हो सके, तो कितना अच्छा हो। किन्तु यह रामराज्य की स्थापना कितनी कठिन साधना का परिणाम है, कितनी समस्याओं से जूझने के बाद, कितनी कठिनाइयों से लड़ने के बाद इस रामराज्य की स्थापना होती है ! इसको आप इस रूप में हृदंयगम कर सकते हैं कि अयोध्याकाण्ड में रामराज्य की स्थापना का संकल्प किया गया। किन्तु अयोध्या में रामराज्य की स्थापना अयोध्याकाण्ड के बाद अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड, इन काण्डों को पार करने के पश्चात् उत्तरकाण्ड में हुई। तब जाकर भगवान राम का राज्याभिषेक किया गया। रामराज्य की विशेषताओं का वर्णन किया गया है। उसका तात्पर्य यह है कि रामराज्य की स्थापना में जो एक लम्बा अन्तराल पड़ा, व्यवधान पड़ा, यह चौदह वर्ष का समय केवल व्यर्थ ही नहीं खोया गया। इन चौदह वर्षों में जो साधनाएँ सम्पन्न हुई, उसी की अन्तिम परिणति रामराज्य के रूप में हुई। इससे समाज में परिवर्तन होता है, उस परिवर्तन में कुछ व्यक्ति ही मुख्य केन्द्र बना करते हैं। साधारण व्यक्ति तो परिवर्तन का सुख भोगना जानता है, पर उस परिवर्तन की प्रक्रिया में स्वयं उतर पाना, उसे गतिशील बनाना, उसके लिए कठिन है।

रामराज्य की स्थापना का जो कार्य है, वह एक ओर तो भगवान श्रीराम के द्वारा और दूसरी ओर श्रीभरत के द्वारा, इन दोनों के सम्मिलित प्रयत्न का ही, उनके आचरण और उनके चरित्र का ही परिणाम है। भगवान श्रीराम ने चित्रकूट में श्रीभरत से एक महत्त्वपूर्ण बात कही थी। उन्होंने यह कहा कि समाज में सारा संघर्ष बँटवारा को लेकर ही होता है। चाहे वह देश का बँटवारा हो, चाहे जाति का बँटवारा हो, चाहे परिवार का बँटवारा हो, यह जो बाँटने की प्रवृत्ति है, यही संघर्ष के मूल में विद्यमान है। इस बँटवारे के पीछे धारणा क्या होती है? प्रत्येक व्यक्ति यही चाहता है कि कम से कम देकर वह अधिक से अधिक पा ले।

हमारे पुराणों में तो कई बातें बड़ी सांकेतिक भाषा में कही गई हैं और वे बड़े महत्त्व की हैं। जैसे समुद्र-मंथन की कथा है। इस समुद्र-मन्थन की कथा का भी जो अर्थ है, वह सच्चे अर्थों में हमारे जीवन में घटित होता हुआ दिखाई देता है। उस समुद्र-मन्थन की प्रक्रिया के द्वारा मानो संकेत किया गया और इसी प्रक्रिया को भगवान श्रीराम और श्रीभरत ने अपने जीवन में चरितार्थ किया। आदर्श स्थिति क्या है? यह संसार ही समुद्र है। इसमें अमृत पाने का प्रयत्न निरन्तर चलता रहता है। गोस्वामीजी को तो इस समुद्र-मन्थन का रूपक अत्यन्त प्रिय है। उन्होंने रामायण के कई प्रसंगों में इस समुद्र-मन्थन के रूपक को लेकर बड़े अद्‌भुत सूत्र दिए हैं।

आपको समुद्रमन्थन का एक सूत्र बालकाण्ड में मिलता है। यहाँ पर जनकनन्दिनी श्रीसीता के सौन्दर्य के लिए उपमाओं का प्रश्न उपस्थित हुआ। भगवान श्रीराम ने जब जनकनन्दिनी श्रीसीता को देखा, तो उनके अन्त:करण में कवित्व का उदय हुआ। कवि जब अपने मन की बात को कहता है, तो उपमाओं के माध्यम से उसे रसपूर्ण बनाता है। भगवान श्रीराम ने भी जनकनन्दिनी श्रीसीता के लिए कई उपमा ढूँढ़ी। लेकिन अन्त में उन्होंने बड़े निराशा भरे स्वर में यह कहा कि –

सब उपमा कबि रहे जुठारी।
केहि पटतरौं बिदेहकुमारी।। १/२२९/८

कवियों ने सारी उपमाओं को जूठा कर दिया, अब मैं विदेहकुमारी के लिए कौन-सी उपमा दूँ? प्रभु ने श्रीसीताजी के लिए जो नाम चुना, वह बड़ा सांकेतिक है। विदेहकुमारी का तात्पर्य है, संसार में जितनी स्त्रियाँ हैं, वे देहकुमारी हैं। देह के माध्यम से उनका जन्म हुआ है और कवियों ने देह को ही केन्द्र बनाकर अपनी कविता और उपमाओं का प्रयोग किया है। पर जनकनन्दिनी श्रीसीता तो वैदेही हैं। अब वह प्रसंग तो बड़ा विस्तृत है, उसका संक्षेप में सूत्र यह है। सौन्दर्य देह में है या सौन्दर्य देह से भिन्न कोई वस्तु है? तो जब तक व्यक्ति को देह में सौन्दर्य दिखाई देता रहेगा, जैसाकि संसार के अधिकांश व्यक्ति को दिखाई देता है, तब तक सौन्दर्य मनुष्य के मन में वासना और कलुष उत्पन्न करता ही रहेगा, जैसाकि सौन्दर्य का परिणाम जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दिखाई देता है। इसलिए सौन्दर्य की एक नई परिभाषा विदेहकुमारी जनकनन्दिनी श्रीसीता के माध्यम से की गई। वस्तुत: सौन्दर्य की परिभाषा वह है, जो विदेहनन्दिनी के सन्दर्भ में प्रस्तुत की गई। इसके लिए गोस्वामीजी ने समुद्र-मन्थन के रूपक को प्रस्तुत किया। उनके सामने प्रश्न यह था और उसी बहाने उन्होंने सौन्दर्य की कमियों की ओर संकेत किया। समुद्र-मन्थन का तात्पर्य यह है कि संसार में जो कुछ सर्वोत्कृष्ट है, विशिष्ट है, उसको पाने के लिए ही संकल्प व्यक्ति के अन्त:करण में उदित होता है। संसार में अच्छे से अच्छा और बुरे से बुरा व्यक्ति इसी के लिए प्रयत्नशील होता है। इसीलिए समुद्र-मन्थन अमृत के लिए किया गया। उस समुद्र-मन्थन की प्रक्रिया में अनगिनत वस्तुएँ निकलीं। गोस्वामीजी ने समुद्र मन्थन की एक प्रक्रिया प्रस्तुत की। वह प्रक्रिया बड़ी अद्भुत है ! उस प्रक्रिया का मुख्य तात्पर्य यह है कि जब तक समुद्र-मन्थन के माध्यम से ऐसे सौन्दर्य की सृष्टि नहीं की जायेगी, तब तक सौन्दर्य मनुष्य के अन्त:करण में कलुष की ही सृष्टि करता रहेगा। उन्होंने समुद्र-मन्थन का जो रूपक प्रस्तुत किया, वह आपको पढ़ने को मिलेगा। उसे अगर मैं ले लेता हूँ, तो मुख्य प्रसंग से हम दूर चले जाएँगे। इसलिये थोड़ा संकेत देता हूँ। गोस्वामीजी कहते हैं –

जौं छबि सुधा पयोनिधि होई।
परम रूपमय कच्छपु सोई।।
सोभा रजु मंदरु सिंगारू।
मथै पानि पंकज निज मारू।। १/२४६/७-८
एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुंदरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय समतूल।।
१/२४७/०

दोनों मन्थन में बड़ा सूक्ष्म भेद है। समुद्र-मन्थन की प्रक्रिया में इन वस्तुओं का प्रयोग किया गया था – समुद्र तो था ही। उसे मथने के लिए मन्दराचल को मथानी बनाया और वासुकी नाग को रस्सी बनाया गया था। देवता और दैत्यों ने मन्थन किया था। लेकिन यहाँ कहते हैं कि उस छवि के समुद्र में शृंगार रस का मन्दराचल पर्वत हो, शृंगार रस की मथानी भी हो, पर वह शोभा, मर्यादा की रज्जु के द्वारा आवेष्टित हो। बड़ी सांकेतिक भाषा आती है कि मन्दराचल पर्वत को जब मथानी के रूप में समुद्र में उतारा जाने लगा, तो अपने भार के कारण वह मन्दराचल पर्वत नीचे की ओर धँसने लगा, तब भगवान ने कच्छप बनकर उस मन्दराचल पर्वत को अपनी पीठ पर ले लिया। तब कहीं जाकर समुद्र-मन्थन की प्रकिया पूरी हुई। गोस्वामीजी से पूछा गया कि आपने इस समुद्र-मन्थन में अमृत की प्राप्ति के लिए, जो सुन्दरता की परिभाषा के लिए, आपने जो नई लक्ष्मी के सृजन के लिए जिस समुद्र-मन्थन की कल्पना की, उसमें आपने सारी वस्तुओं को तो बदल दिया, लेकिन अब यह बताइए कि उस समुद्र मन्थन में तो कच्छप थे, इसमें कौन-सा कच्छप होगा? तो गोस्वामीजी ने कहा –

परम रूपमय कच्छपु सोई।।

समुद्र-मन्थन की प्रक्रिया में सारी वस्तुओं को भले ही बदल दें, पर कच्छप तो भगवान को ही होना चाहिए। अगर सरल भाषा में कहें, तो इसका तात्पर्य यह है कि जैसे मथानी

किसी रस्सी से आवेष्टित नहीं होगी, तो मथानी एक ओर झुक जायेगी और नीचे आधार नहीं होगा, तो मथानी डूब जायेगी, नीचे चली जायेगी। ठीक इसी प्रकार से सौन्दर्य, मर्यादा, शृंगार, जब तक इन सबका आधार भगवान नहीं होंगे, तब तक सौन्दर्य व्यक्ति को अधोगामी बनायेगा, जैसाकि समाज में होता रहा है।

इस देश में शृंगार रस की कविताओं ने कभी बड़ी हानि पहुँचाई है, क्योंकि सौन्दर्य का आधार ईश्वर को प्रस्तुत नहीं किया गया। उसके बाद गोस्वामीजी ने बड़ी अद्‌भुत बात, बड़ी काव्यमयी भाषा में कहते हैं। उनसे पूछा गया कि देवता और दैत्यों ने मिलकर समुद्र-मन्थन किया, तो यह जो नया समुद्र आप मथने के लिए लिख रहे हैं, इसमें मथनेवाला देवता कौन है और दैत्य कौन है? गोस्वामीजी ने कहा कि इस समुद्र का मन्थन देवता और दैत्यों ने मिलकर नहीं किया है। अपितु इस समुद्र का मन्थन स्वयं अकेले कामदेव करते हैं –

मथै पानि पंकज निज मारू।।

बड़ी अद्‌भुत कल्पना है। शृंगार है, शोभा है, छवि है, उसके आधार के रूप में भगवान हैं, पर मन्थन करने वाला कामदेव हैं। इसका अभिप्राय क्या है? सौन्दर्य के साथ सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि उसको देखकर वासना की सृष्टि होती है, लेकिन इस सौन्दर्य की सृष्टि करने के लिए कामदेव को ही पिता बना दिया गया। वही मन्थन करके प्रगट करेगा। तो काम अन्यों के प्रति भले ही वासना की सृष्टि करे, पर अपनी कन्या के लिए पिता के मन में वासना की सृष्टि नहीं आती। इसलिए यदि काम को ही मन्थनकर्ता बना दिया जाये, तो काम इस सौन्दर्य के प्रति वासना को उदित नहीं होने देगा। यही दिव्य सौन्दर्य है। इस प्रकार से जो यह दिव्य सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्य है, यही लक्ष्मी है। सौन्दर्य के समस्त जो दोष हैं, उसका इसमें सर्वथा अभाव है। ऐसी सौन्दर्य लक्ष्मी जब समाज में जन्म लेती हैं, तब उनकी पूजा होती है, वह लक्ष्मी नहीं जो –

बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही। १/२४६/६

इसका अभिप्राय है कि लक्ष्मी की आवश्यकता पग-पग पर है, पर लक्ष्मी के साथ दो समस्याएँ जुड़ी हुई हैं। समुद्र-मन्थन जब हुआ, तो समुद्र से लक्ष्मीजी उत्पन्न हुईं, पर लक्ष्मीजी के साथ विष भी उत्पन्न हुआ और वारूणी भी उत्पन्न हुई। अगर काव्य की भाषा में कहें, तो जैसे कन्या को अपने भाई-बहन से बड़ा प्रेम होता है, वैसे ही समुद्र मन्थन में जो लक्ष्मी निकलीं, उनको भी दो वस्तुएँ बड़ी प्रिय हैं – विष और वारुणी। उसका अभिप्राय है कि जहाँ लक्ष्मी की प्राप्ति हुई, तो व्यक्ति वारुणी की ओर आकृष्ट होता है। धन की वारुणी, पद की वारुणी, सत्ता की वारुणी पीकर व्यक्ति मतवाला हुए बिना नहीं रहता। इसका अभिप्राय है कि जब वह मतवाला व्यक्ति चलेगा, तो मृत्यु की दिशा में ही चलेगा, विनाश की ओर ही बढ़ेगा। इसलिए ऐसी सौन्दर्य-लक्ष्मी की उपादेयता समाज के लिए कल्याणकारी नहीं है, जो व्यक्ति को उन्मादी बनावे और मृत्यु की दिशा में ढकेल दे।

लक्ष्मी की आवश्यकता तो है। तो उपाय क्या है? श्रीसीताजी को लक्ष्मी बनाया गया। श्रीराम से उनका परिणय हुआ। इसका सांकेतिक अर्थ यह है कि जब तक कन्या का विवाह नहीं होता है, तब तक उसका भाई-बहन से प्रेम होता है, किन्तु जब विवाह हो जाता है, तो अपने पति से प्रेम होता है। इसी तरह से लक्ष्मीजी जब तक अविवाहित रहेगीं, तब तक विष और वारुणी से प्रेम करेंगी और जब नारायण से जुड़ जाएँगी, तो फिर विष और वारुणी से उनका नाता टूट जायेगा। ऐसी सौन्दर्य-लक्ष्मी अगर प्राप्त हो जाय, तो समाज में धन्यता, पवित्रता का उदय होगा, समाज में अमृतत्व का उदय होगा। इस प्रकार से गोस्वामीजी ने समुद्र मन्थन का एक रूपक बालकाण्ड में सौन्दर्य के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ३२६ का शेष भाग

ग्रहणीय वस्तु, जननेन्द्रिय और उसका विषय – भोग, गुदा और उसके विसर्जनीय – मल-मूत्र आदि, दोनों पाँव और उनके गन्तव्य – स्थान, मन और मननीय विषय, बुद्धि और ज्ञातव्य विषय, अहंकार और उसका विषय, चित्त और चेतना का विषय, तेज और उसके द्वारा प्रकाश्य विषय, प्राण और उसके धारण-योग्य विषय। (ये सभी उस परब्रह्म में स्थित हो जाते हैं)।। **(क्रमशः)**

गीतातत्त्व-चिन्तन (१५)

ग्यारहवाँ अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ११वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

अवान्तर उपायों से ईश्वर प्राप्ति सम्भव नहीं

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै
र्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर।।४८।।

कुरुप्रवीर (हे अर्जुन!) नृलोके एवंरूप (मनुष्यलोक में ऐसा रूप) न वेदयज्ञाध्ययनैः न दानैः न क्रियाभिः न च उग्रैः तपोभिः (न वेदपाठ से और न यज्ञों के अनुष्ठान से, न दान से, न कर्मों से और न उग्र तपों से ही) त्वदन्येन द्रष्टुम् शक्यः (तेरे अतिरिक्त अन्य के द्वारा देखा जा सकता है)।

हे अर्जुन ! मनुष्यलोक में ऐसा रूप न वेदपाठ और न यज्ञों के अनुष्ठान से, न दान से, न कर्मों से और न उग्र तपों से ही तेरे अतिरिक्त अन्य के द्वारा देखा जा सकता है।

क्या वेद के द्वारा आपका यह रूप देखने में आता है? भगवान कहते हैं – नहीं। क्या यज्ञ के द्वारा आपका यह रूप दिखने में आता है? मनुष्य यदि बहुत से यज्ञ करे, तो क्या

हम ऐसा सोच सकते हैं कि यज्ञों के बल पर मनुष्य भगवान के रूप को देखने में समर्थ होगा, तो भगवान कहते हैं – नहीं। अच्छा, शास्त्रों का यदि बहुत अध्ययन किया जाए, तो क्या भगवान को देखने में समर्थ हुआ जा सकता है? भगवान कहते हैं, नहीं। दान के बल पर? नहीं। तीर्थाटन, मंदिर-पूजन, कर्मानुष्ठान आदि से क्या भगवान प्रसन्न नहीं होंगे? तो कहते हैं, यह भी मापदण्ड नहीं है उनकी प्रसन्नता का। अच्छा क्या कठोर तपस्या करके, शरीर को कष्ट देकर भगवान को पकड़ा नहीं जा सकेगा? उत्तर मिलता है, इसके द्वारा भी नहीं। भगवान अर्जुन से कहते हैं, ऐसा जो यह मेरा रूप तूने देखा अर्जुन !

वैसा इस मर्त्यलोक में दूसरा कोई देख ही नहीं सकता। न तो वेद के बल पर – वेद का तात्पर्य ज्ञान भी हो सकता है। चूँकि ज्ञान की राशि ग्रन्थों में निबद्ध है, इसलिए वेद के नाम से वह विख्यात है। यदि कोई मनुष्य अपने ज्ञान का दंभ करे और सोचे कि उससे तो भगवान मिल ही जायेंगे, तो ऐसा नहीं है। हे कुरुप्रवीर! तुझको छोड़कर अन्य किसी के द्वारा मैं इस रूप में देखा नहीं जा सकता, चाहे मनुष्य कितनी भी क्रियाएँ कर ले। हे भगवन ! तब आपने मुझ पर ही कैसे कृपा की? तो कहते हैं – तुझ पर मैं प्रसन्न हूँ, इसीलिए! भगवान की प्रसन्नता ही हमें भगवान का दर्शन कराती है। ऐसे तो भगवान हमको दिखाई दे नहीं सकते, पर अन्धकारपूर्ण रास्ते में जब वे प्रकाश को अपनी ओर कर लेते हैं, सिपाही की चोर-लालटेन की तरह, तब हम उनको देखने में समर्थ होते हैं।

अर्जुन के भय का नाश

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम्।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं
तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य।।४९।।
संजय उवाच

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा
स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः।
आश्वासयामास च भीतमेनं
भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा।।५०।।

मम ईदृक् इदम् घोरम् रूपम् दृष्ट्वा (मेरे इस प्रकार के इस विकराल रूप को देखकर) ते व्यथा मा च विमूढभाव: मा (तुझे व्यथा और मूढ़भाव मत प्राप्त हो) त्वम् व्यपेतभी: प्रीतमना: (तू भयरहित और प्रीतियुक्त हो) तत् एव मे इदम् रूपम् पुन: प्रपश्य (मेरे उसी इस रूप को फिर देख) संजय उवाच (संजय बोले) वासुदेव: अर्जुनम् इति उक्त्वा (वासुदेव भगवान ने अर्जुन को इस प्रकार कहकर) भूय: तथा स्वकम् रूपम् दर्शयामास (फिर वैसे ही अपने चतुर्भुज रूप को दिखलाया) च पुन: महात्मा सौम्यवपु: भूत्वा (फिर महात्मा कृष्ण ने सौम्यमूर्ति होकर) एनम् भीतम् आश्वासयामास (इस भयभीत अर्जुन को धीरज दिया)।

''मेरे इस प्रकार के इस विकराल रूप को देखकर तुझे व्यथा और मूढ़भाव मत प्राप्त हो, तू भयरहित और प्रीतियुक्त हो मेरे उसी इस रूप को फिर देख।

''संजय बोले – वासुदेव भगवान ने अर्जुन को इस प्रकार कहकर फिर वैसे ही अपने चतुर्भुज रूप को दिखलाया और फिर महात्मा कृष्ण ने सौम्यमूर्ति होकर इस भयभीत अर्जुन को धीरज दिया।''

भगवान कहते हैं, मैंने प्रसन्न होकर आत्मयोग के द्वारा तुझे अपना रूप दिखाया। तू व्यथित मत हो। तेरी जो यह विमोह की स्थिति है, वह दूर हो जाए। मोह उत्पन्न होने के कारण ही तू सही विचार करने में असमर्थ हुआ है, इसलिए अपने मोह को दूर कर ले। मेरा यह जो रूप था, वह घोर था। इसे देखकर जो विमूढ़ भाव पैदा हुआ, जो व्यथा तुझमें उत्पन्न हुई, वह अब दूर हो जाए। तेरा जो भय है, वह नष्ट जो जाए और अभी मेरे उस रूप को देखकर तेरे मन की जो प्रीति चली गई थी, उसे अब मेरे इस रूप को देखकर वापस तो ला ! जिस सामान्य रूप में कृष्ण सदा रहते थे, उस रूप की बात यहाँ नहीं कर रहे हैं, बल्कि अर्जुन ने उनके जिस चतुर्भुज रूप को देखने की इच्छा की थी, उस रूप की बात कर रहे हैं। अर्थात् भगवान के कृष्ण रूप के अलावा अर्जुन उनके दो और रूपों के दर्शन करता है। एक तो विश्वरूप, जिसको देखकर वह घबड़ा जाता है, भयभीत होता है और प्रार्थना करने लगता है कि वे अपने उस रूप को संवरित कर लें और चतुर्भुज रूप को दिखा दें। उसकी प्रार्थना स्वीकार करके भगवान वासुदेव ने अपना निजी रूप पुन: दिखाया और डरे हुए अर्जुन को अपना सौम्य शरीर दिखाया। यहाँ जो भगवान के चतुर्भुज और सौम्यरूप के लिए अपना शब्द का प्रयोग हुआ, तो क्या विराटरूप उनका अपना नहीं था? इसकी यही व्याख्या की जाती है कि भगवान कृष्ण को हम नारायण का अवतार कहते हैं। नारायण के सम्बन्ध में यही कल्पना है कि वे शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज भगवान हैं। तो साधरणतया जो कल्पना कृष्ण के सम्बन्ध में है, वह यह है कि वे भगवान नारायण के अवतार हैं, इसीलिए कृष्ण के चतुर्भुज रूप के लिए स्वकम् शब्द का प्रयोग किया गया है। वैसे तो भगवान कृष्ण सामान्य रूप से दो भुजाधारी हैं, जिनके साथ अर्जुन सदा रहता आया है, खेला है। पर उस रूप को नहीं, चतुर्भुज रूप को अपना बताकर भगवान ने अर्जुन को दिखाया है और यहाँ यह संकेत भी मिलता है कि अपना ऐसा रूप भगवान ने पहली बार ही अर्जुन को दिखाया है। जैसे पहली बार उसने उनका विश्वरूप देखा था, उसी प्रकार उसने यहाँ पहली बार उनका चतुर्भुज रूप देखा।

अर्जुन उवाच
दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेता प्रकृतिं गतः।।५१।।
श्रीभगवान उवाच
सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम।
देवाऽप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः।।५२।।

अर्जुन उवाच (अर्जुन बोले) जनार्दन (हे जनार्दन!) तव इदम् सौम्यम् मानुषम् रूपम् दृष्ट्वा (आपके इस अतिशान्त मनुष्यरूप को देखकर) इदानीम् सचेता: संवृत: अस्मि (अब मैं सचेत हो गया हूँ) प्रकृतिम् गत: (अपनी प्राकृतिक अवस्था को प्राप्त हो गया हूँ) श्रीभगवान उवाच (श्रीभगवान बोले) मम यत् रूपम् दृष्टवान् असि (मेरा जो चतुर्भुजरूप तुमने देखा है) इदम् सुदुर्दर्शम् देवा: अपि (यह दुर्लभ है, देवता भी) नित्यम् अस्य रूपस्य दर्शनकांक्षिण: (सदा इस रूप के दर्शन को लालायित रहते हैं)।

''हे जनार्दन ! आपके इस अतिशान्त मनुष्यरूप को देखकर अब मैं सचेत हो गया हूँ, मैं अपनी प्राकृतिक

अवस्था को प्राप्त हो गया हूँ।''

''श्रीभगवान बोले – मेरा जो चतुर्भुजरूप तुमने देखा है, यह दुर्लभ है। देवता भी सदा इस रूप के दर्शन को लालायित रहते हैं।''

सञ्जय ने धृतराष्ट्र को बताया कि अब अर्जुन भगवान से कह रहा है, 'मैंने आपके इस मानुषी रूप को देखा। यह सौम्य है। इसमें आपके विराटरूप जैसी भयानकता नहीं है। आपके इस रूप को देखकर मैं सचेत हो गया हूँ। अर्थात् मेरी बुद्धि ठिकाने पर आ गयी है। आपके उस घोररूप को देखकर मैं घबरा गया था। अब आपके इस सौम्यरूप को देखकर मैं प्रकृतिस्थ हो गया हूँ। स्वभावस्थ हो गया हूँ। भगवान के चतुर्भुजरूप के प्रति यहाँ अर्जुन एक शब्द का प्रयोग करता है – मानुषीं। अर्थात् आपके मानुषीरूप को मैंने देखा। इसका क्या अर्थ है? टीकाकार इसका अर्थ यह करते हैं कि भगवान कृष्ण का जो दो हाथोंवाला सहजरूप था, वह तो मानुषी था ही, पर उन्होंने अपना यह जो चतुर्भुजरूप दिखाया, यह भी मानुषी ही है। भगवान नारायण का रूप भी मानुषी ही कहलाता है। नरसिंह अवतार, वराह अवतार आदि में तो भगवान का रूप मानुषी नहीं है। भगवान के चतुर्भुजरूप को देखकर अर्जुन बहुत हर्षित होता है और भगवान से कहता है, 'आपने मुझ पर बड़ी कृपा की।' **(क्रमशः)**

पृष्ठ ३४१ का शेष भाग

कोई ऐसा मानता है कि मैंने किसी को मारा, वह गलत है। जो कोई यह मानता है कि मैं मरा या वह मरा, यह भी गलत है। अरे !

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे।। (गीता २.२०)
वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम्।।
(गीता, २.२१)

न इस आत्मा का कभी जन्म होता है और न मृत्यु। इतना ही नहीं, यह आत्मतत्त्व ऐसा है कि –

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।
(गीता, २.२३)

इसको शस्त्रों से काटा नहीं जा सकता। आग से जलाया नहीं जा सकता। इसको पानी से भिगोया नहीं जा सकता और न इसे वायु से सुखाया जा सकता है। यह अमर आत्मतत्त्व बस केवल शरीर छोड़ करके जाता है और यह इतना सरल है कि भगवान कहते हैं, जैसे हम दीपावली या अन्य त्यौहार में वस्त्र बदलते हैं, पुराने वस्त्र उतार कर नये धारण कर लेते हैं, वैसे आत्मा इस शरीर को छोड़ देती है। ○○○

कविता

बस चरणों में ही रहने दो

प्रदीप चित्रांशी

तुम ही हो, सारथी अर्जुन के
तुम ही हो, मानस के राम ।
तुम ही हो, गुरु विवेकानन्द के
तुम ही हो, राधा के श्याम ।।
मानव रूप धर प्रणव तुम्हीं हो
प्रणतपाल तुम ही तो हो ।
जन-जन के मन की बातों को
पढ़नेवाले तुम ही तो हो ।
मेरे रामकृष्ण, मेरे राम, कृष्ण
मेरे परमहंस श्रीरामकृष्ण ।
विट्ठल, राघव, श्रीरामकृष्ण
तुम ही तो सारदा रामकृष्ण ।।
मैंने तुमको पहचान लिया
हनुमान के राम तुम्हीं तो हो ।
नटवर की छवि रखनेवाले
मीरा के कृष्ण तुम्हीं तो हो ।।
मत दूर करो प्रभु अपने से
बस चरणों में ही रहने दो ।
चाह नहीं कुछ भी है मेरी
बस चरणों में ही रहने दो ।।

साधुओं के पावन प्रसंग (५३)

स्वामी धीरेशानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

स्वामी धीरेशानन्द

मैंने काशी में गुरुदास गुप्त को देखा है, किन्तु कोई बातचीत नहीं हुई। वे भी काशी सेवाश्रम के १० नम्बर वार्ड में रहते थे। काशी के अद्वैत आश्रम के बरामदे में वरिष्ठ संन्यासीगण स्मृतियाँ बताते थे। गुरुदास बाबू वह सब सुनकर कमरे में आकर लिखते थे। ठाकुर के संन्यासी-शिष्यों तथा गृही-शिष्यों के लिए अलग-अलग कॉपी थी। वह सब दैनन्दिनी उन्होंने मृत्यु के पहले धीरेशानन्द जी महाराज को दीया था और परवर्तीकाल में वह सब मैंने काशी जाकर स्वामी रघुवरानन्द जी के पास से लिया था। गुरुदास बाबू के सम्बन्ध में महाराज ने मुझे २४/११/१८८१ को लिखा था : ''ठाकुर के पार्षदों के बारे में गुरुदास बाबू द्वारा लिखित (प्रकाशित-अप्रकाशित) बहुत-सी कॉपियाँ उनके मरणोपरान्त मेरे पास है। उनको तो जानते हो? नरैल कॉलेज में गणित के प्रोफेसर थे। आकुमार ब्रह्मचारी, स्वामी सारदानन्द जी महाराज के कृपाप्राप्त प्रियशिष्य, आजीवन साधन-भजनशील, सुपण्डित, मधुरभाषी गुरुदास बाबू में बहुत सारा सद्गुण था। अन्त में कई वर्ष काशी में जीवन व्यतीत करके बाबा विश्वनाथ के चरणों में लीन हो गये।''

इन सब मूल्यवान दैनन्दिनियों से मुझे They Lived with God, God Lived with Them तथा उद्बोधन से प्रकाशित ठाकुर के पार्षदों की स्मृतिमाला लिखने में बहुत सहायता मिली है। हमारे समय के किसी ने भी ठाकुर के पार्षदों को नहीं देखा है। किन्तु उनके शिष्य और भक्तों के प्रत्यक्ष विवरण ने हमलोगों को उनलोगों के विषय में बहुत कुछ बताया है। इन सब संन्यासियों की स्मृतिकथा लिखते हुए ऐसा मन हो रहा है कि यदि ये वरिष्ठ संन्यासिगण दैनन्दिनी लिखकर रखते, तो हमलोग ठाकुर, श्रीमाँ और उनके संन्यासी शिष्यों की कितनी बातें जान पाते। गतस्य सोचना नास्ति। हमलोग जो संग्रह कर पाये हैं, उससे ही सन्तुष्ट रहना होगा।

महाराज ने मुझे बहुत सारे पत्र लिखे थे। उन सब पत्रों में बहुत सारगर्भित उपदेश, शास्त्रवाक्य तथा साधन-संकेत रहता था। यहाँ पर कई पत्रों का सार प्रस्तुत कर रहा हूँ।

३०/०३/१९८१, काशी सेवाश्रम

तुमको एक वरिष्ठ साधु के मुँह से सुना हुआ एक उपदेश उपहार के रूप में दे रहा हूँ :

लोग साँप और नेवला का खेल देखते हैं। नेवला साँप को काटता है और साँप भी नेवला को काटता है। साँप के काटने पर नेवला जल्दी से बाहर चला जाता है और वापस भी आ जाता है। लोग कहते है कि उस समय नेवला जंगल में जाकर कोई जड़ी-बूटी (सिकड़ या लता-पता) सूँघ लेता है, जिससे साँप के विष का प्रभाव नष्ट हो जाता है। नेवला अर्थात ज्ञानी। व्यवहार में ज्ञानी को कोई अपमान करता है अथवा अन्य कोई विक्षेप का कारण घटित हुआ, तब ज्ञानी आत्मज्ञान रूपी जड़ी-बूटी को सूँघ कर विक्षेप रूपी विषक्रिया से मुक्त हो जाता है। जब कभी चित्त बहिर्मुख होकर विक्षिप्त हो जाता है तभी ज्ञानी अन्तर्मुख होकर नेवला जैसा आत्मज्ञान रूपी जड़ीबूटी का आश्रय लेकर रहता है। उसके प्रभाव से व्यवहारजनित विक्षेप का प्रभाव और नहीं रहता। जितने दिन तक शरीर है, उतने दिन तक व्यवहार चलता ही रहता है और उसकी क्रिया-प्रतिक्रिया भी रहती है। तब चित्त का विक्षेप भी रहेगा, क्योंकि चित्त का यही स्वभाव है। किन्तु आत्मज्ञान रूपी जड़ी-बूटी रहने से भय किस बात का? कोई भी विष उसको घायल नहीं कर सकेगा। मैं आत्मा हूँ, दृश्य मिथ्या – एक प्रतीति मात्र है। एक मैं ही नाना दृश्य रूप में प्रतीत हो रहा हूँ। भ्रम के समय ही रज्जु में सर्प देखा जाता है। रज्जु में ही सर्प अवस्थित है तथा सर्प में ही

रज्जु अनुस्यूत हुआ है। अर्थात् केवल रज्जु ही सर्प के रूप में प्रतीत हो रहा है। 'सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि' (६.२९) – इस श्लोक का यही तात्पर्य है। अर्थात् वही एक ठाकुर का खेल विश्व में चल रहा है। एक वही सर्वरूप में प्रतीत हो रहे हैं। यही तो एक महानाटक है।

२४/११/१९८१, काशी सेवाश्रम

जगत का कितना ही चित्र प्रतिदिन हमारे सामने आ रहा है और विलीन हो जा रहा है। एक उत्तराखण्डी साधु बायस्कोप का उदाहरण देकर बहुत अच्छा कहते थे। ऐसा उदाहरण कि स्वप्न भी नहीं है, कारण बायस्कोप जाग्रत अवस्था में ही देखा जाता है। पर्दा के ऊपर कितना दृश्य है – वर्षा हो रही है, आग लग गयी है – इससे पर्दा न तो गीला हुआ और न ही जल गया। उसी प्रकार शुद्ध पर्दा हुआ शुद्ध ब्रह्म। बुद्धि मशीन है, फीता में छोटा-छोटा चित्र है वासना और बिजली का प्रकाश हुआ माया। जैसे प्रकाश से ही छोटा-छोटा चित्र पर्दा पर बड़ा-बड़ा देखा जाता है, वैसे ही माया की अचिन्त्य शक्ति से बुद्धिस्थ सूक्ष्म वासनाएँ शुद्ध आत्मा को आधार बनाकर दृश्यरूप धारण करती हैं। किन्तु पर्दा के जैसा शुद्ध ब्रह्म में कोई विकार नहीं है।

०५/०३/१९८२, काशी सेवाश्रम

मैंने तुम्हारी लिखी हुई लाटू महाराज की पुस्तक पढ़ी। बहुत अच्छी लगी। बहुत अच्छी पुस्तक है। सुन्दर संग्रह, सुन्दर व्यवस्था, अंग्रेजी भी सुन्दर है। खुब लिखो, तुम्हारे कलम पर माँ सरस्वती बैठें। वक्तृता से भी लेखन कार्य अधिक अच्छा है, क्योंकि वह स्थायी होता है। How a Shepherd Boy Became a Saint पुस्तक के ८८ पृष्ठ पर जो घटना तुमने लिखी है, वह मैंने पूजनीय सुधीर महाराज (स्वामी शुद्धानन्द) के मुँह से सुनी थी। हो सकता है कि पूजनीय सारदानन्द जी महाराज ने शुद्धानन्द जी से सुनकर बतायी हो। घटना सुधीर महाराज के साथ ही घटित हुई थी। शुद्धानन्द महाराज का विवरण : ''लाटू महाराज को लेकर एक सभा में एक पण्डित का व्याख्यान सुनने के लिए गया था। **'तं स्वाच्छरीरात्प्रवृहेन्मुंजादिवेषीकां धैर्येण** (कठ उपनिषद् २/३/१७) – यह व्याख्या सुनकर ही लाटू महाराज उसी सभा के बीच में जोर से बोल उठे, 'ये सुधीर! पण्डित ठीक बोल रहा है।' मैं किंकर्तव्यविमूढ़ था। कहा, 'महाराज, चुप चुप।' उन्होंने पुनः उसी प्रकार कहा। मैंने कहा, 'महाराज, चुप, चुप।' कुछ समय तक उनके इसी प्रकार पुनः पुनः बोलने से लोगों के गुस्सा होने के भय से मैंने कहा, 'महाराज, चलिए मठ में जाते हैं।' उनको लेकर मठ में आया। हम एक ही कमरे में रहते थे। रात्रि में मैं सो रहा था। लाटू महाराज जग रहे थे, बैठे हुए मुझे पुकारा, 'ये सुधीर।' मैं उठ गया। उन्होंने कहा, 'पण्डित ठीक बोल रहा है।' मैं पुनः सो गया। फिर से वही पुकार, 'ये सुधीर ! पण्डित ठीक बोल रहा है।' पूरी रात कुछ देर के बाद, बीच-बीच में उसी प्रकार चलता रहा। पूरी रात मेरी नींद नहीं हुई। लाटू महाराज उस भाव में पूरी तरह तन्मय हो गये थे, उनको संस्कृत नहीं आती थी फिर भी। जैसे स्व-अनुभव विषय है ! तभी उतना उल्लास था !''

अन्य एक घटना। लाटू महाराज (स्वामीजी से कहा), ''देखो भाई लोरेन, किशुब बाबू (केशव सेन) टॉउन हॉल में कैसे लेक्चर देते हैं। तुम भी उसी प्रकार लेक्चर देना और मैं तुम्हारे लिए एक कलशी जल लेकर बैठा रहूँगा।'' स्वामीजी ने अमेरिका से लिखा था : ''लेटो भाई की इच्छा यहाँ पर पूर्ण कर रहा हूँ। बहुत लेक्चर दे रहा हूँ।'' स्वामीजी के कोलकाता लेक्चर के समय लाटू महाराज एक कलशी जल लेकर बैठे थे और अपनी इच्छा सोलहों आना पूर्ण कर पाये थे।

सुख-दुख सब अपने कर्म से होता है। तब किसको दोष दूँगा? भगवान केवल मेरे कर्म के अनुसार ही सुख-दुख रूपी फल दे रहे हैं। इस विषय में उनका कोई पक्षपात नहीं है। इसीलिए खुशी मन से दोनों को स्वीकार करना बुद्धिमानी का कार्य है।

'सुख सपना दुख बुद्‌बुदा, दोनों एक समान।
तिनका आदर कीजिए, जो भेजे भगवान।।

सुख स्वप्न के जैसा है। देखते-देखते ही अदृश्य हो जाता है। दुख हुआ बुदबुदा के समान। वह भी स्थायी नहीं। दोनों को समान रूप से जानो। दोनों को समान रूप से आदर करो। जब जैसा भगवान देते हैं उसी को सन्तुष्ट मन से स्वीकार करो। यही बुद्धिमान का कार्य है। नहीं तो क्या करोगे? दुख आने से हो सकता है कि हाय-हाय करोगे और थोड़ा-सा सुख पाने से ही प्रसन्न हो जाओगे। इस हर्ष-विषाद के द्वन्द्व में डूबते-उतराते रहोगे और क्या? इस प्रकार जीवन व्यर्थ हो जायेगा।

स्व-स्वरूप में स्थित रहना ही उचित है। स्वरूप की विस्मृति ही दुख है। मनुष्य जब अच्छा रहता है, तब क्यों अच्छा या सुख से है, यह प्रश्न नहीं करता। यदि कोई कहता है कि दुखी हूँ, तो लोग दुख का कारण पूछते हैं। जो स्वाभाविक अवस्था है, उस विषय में प्रश्न नहीं होता। आग गरम या जल ठण्डा यह प्रश्न नहीं किया जाता। इसका उलटा होने से ही प्रश्न किया जाता है। उसी प्रकार सुख में रहना जीव का स्वभाव है, क्योंकि सुख उसका स्वरूप है। इसीलिए सुख या स्वरूप में रहने से प्रश्न नहीं होता। दुख अर्थात् स्वरूप से विच्युत होने से ही प्रश्न होता है, उस प्रकार क्यों हुआ इत्यादि। इसीलिए सुख जीव का स्वरूप है। स्व-स्थता ही सुख है। अ-स्व-स्थता ही दुख।

२४/१२/१९८२, काशी सेवाश्रम

वेदान्त के प्रकरण ग्रन्थों में विशेष प्रयोजनीय मुझे लगता है : (१) विवेकचूडामणि, (२) आत्मबोध (३) तत्त्वबोध (४) उपदेशसाहस्री तथा श्रीशंकराचार्य द्वारा रचित और छोटा-छोटा ग्रन्थ (५) पंचदशी (६) नैष्कर्म्यसिद्धि (७) वेदान्तसार।

पंचदशी प्रक्रिया साधन और साध्य के विषय में निर्णायक अद्वितीय पुस्तक है। अपरोक्षानुभूति, वाक्यवृत्ति, लघुवाक्यवृत्ति, पंचीकरण वार्तिक, यह सब अति उत्तम पुस्तकें हैं। वेदान्त ज्ञान के लिए आरम्भ में प्रकरण ग्रन्थ का अधिक अध्ययन करना चाहिए। बाद में भाष्य आदि पढ़ना चाहिए। प्रकरण ग्रन्थ का विशेष पठन-पाठन हमारे संघ में नहीं होता। इसीलिए भाष्य आदि पढ़ने से ही प्रक्रिया के बोध के अभाव में, सिद्धान्त के अभाव में अनेकों को सुस्पष्ट धारणा नहीं होती है।

तुमने मुझे जिस विषय में लेख (वेदान्त के विषय में) लिखने के लिए कहा है, मेरे द्वारा वह अब नहीं होगा। शरीर रोगजीर्ण हो गया है। इसीलिए शरीर और मन; दोनों में अब पहले जैसी शक्ति नहीं है। अभी 'अब शिव पार करो मेरी नैया' यह भाव है। ठाकुर का नाम लेते-लेते जिससे अच्छी तरह चला जाऊँ, अब यही आशीर्वाद अर्थात् शुभेच्छा तुमलोग सब करो। Chronic का अनेक उपद्रव प्रारब्ध-भोग करके उसका क्षय करा ले रहा है। वह देख रहा हूँ। अभी कब यह प्रपंच-स्वप्न टूटेगा, इसी प्रतीक्षा में हूँ।

'यथा गन्धर्वनगरं यथा वारि मरुस्थले।
तथा विश्वमिदं दृष्टं वेदान्तेषु विचक्षणैः।।'

यह तो हमलोगों के मन की बात है। उतराखण्ड के एक वेदान्ती वृद्ध संन्यासी की बात है : रोगजीर्ण, चलने में असमर्थ एक महात्मा ने मुझसे कहा था, ''देखो, लोग आशीर्वाद देते हैं शतं जीव, दीर्घायु होओ। क्या मूर्खता है! दीर्घायु होकर इस प्रकार बुढ़ा होकर जीवित रहने के लिए! जितनी उम्र अधिक होगी, उतना ही इस प्रकार शरीर को लेकर चलना होगा। इस से अधिक दुर्भाग्य, कष्ट क्या होगा? फिर भी लोग दीर्घायु होना चाहते हैं। जीवित रहना चाहते हैं। क्या ही मूर्खता है? इस प्रकार विचार आने से अन्त में भी वृद्धावस्था में भी शरीर के प्रति वैराग्य आयेगा। जो इस प्रकार विचार-बोध सम्पन्न होगा, उसी को वैराग्य होगा, अन्य को नहीं। शास्त्र का भी यही उद्देश्य है। तभी शास्त्र कहते हैं, **जीजीविषेच्छतं समाः। (क्रमशः)**

पृष्ठ ३४३ का शेष भाग

लीलासंगी हैं, उन्हें उदाहरण-स्वरूप बनाकर श्रीचैतन्य ने समग्र समाज पर शासन किया। नियमबद्ध नहीं चलने पर महापुरुष भी विफल हो जाते हैं।

७-०९-१९६४

माँ के शिष्य स्वामी ईशानानन्द महाराज ने आकर गोलाप माँ की दो बातें बताईं –

१. गणेश लाटू महाराज के सेवक थे। वे गोलाप माँ का स्नेह पाकर बोले – ''लाटू महाराज भी इसी तरह स्नेह करते थे।'' गोलाप माँ बोलीं, ''उन्होंने और क्या किया, उन लोगों ने ठाकुर से जो स्नेह पाया है, उन लोगों ने जो पाया है, उसी का थोड़ा-सा तुम्हें दिया है। तुम भी जो पाए हो, उसका थोड़ा-बहुत सबको दो। उसी से ही शान्ति पाओगे, अन्यथा स्नेह पाने की इच्छा रखने पर कष्ट पाओगे।''

२. बरदा मामा का देहान्त हुआ, तब माँ को नही बताया गया। उस समय माँ के अन्तिम काल की अस्वस्थता थी, ज्वर हुआ था। माँ ने वरदा मामा को पैसा भेजने को कहा, किन्तु ईशानानन्द महाराज ने वरदा मामा के देहान्त का समाचार जानकर पैसा नहीं भेजा। जब माँ ने इसके लिए फटकारा, तब गोलाप माँ ने बता दिया, ''किसको भेजेंगे? उनकी मृत्यु हो गई।'' यह सुनकर माँ ने बहुत विलाप किया। बाद में उनके श्राद्ध के लिए बीस रुपया भेजा गया। **(क्रमशः)**

स्वामी प्रभानन्द जी महाराज ब्रह्मलीन हुये

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के वरिष्ठ उपाध्यक्ष परम पूज्यपाद श्रीमत् स्वामी प्रभानन्द जी महाराज १ अप्रैल, २०२३ को सायंकाल ६.५० बजे रामकृष्ण मिशन सेवा प्रतिष्ठान, कोलकाता में ब्रह्मलीन हो गये। उनकी आयु ९१ वर्ष थी एवं विगत छह माह से वह वृद्धावस्थाजनित शारीरिक रोगों से पीड़ित थे।

स्वामी प्रभानन्द जी महाराज का जन्म, १७ अक्तूबर, १९३१ को अखौरा, जिला टिप्पेरा (वर्तमान में बांग्लादेश में स्थित) में हुआ था। महाराज की दीक्षा स्वामी शंकरानन्द जी महाराज से हुई थी। १९५८ में सर्वप्रथम नरेन्द्रपुर आश्रम से जुड़े एवं १९६६ में स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज से संन्यास दीक्षा प्राप्त की। उन्होंने नरेन्द्रपुर, सारदापीठ एवं सेवा प्रतिष्ठान केन्द्र में सहायक एवं पुरुलिया तथा इंस्टीट्यूट ऑफ कल्चर, गोलपार्क में अध्यक्ष के रूप में अपनी सेवाएँ प्रदान कीं। नरेन्द्रपुर में उन्होंने इस्टीट्यूट ऑफ सोशल एजुकेशन एंड रिक्रेयेशन सामाजिक शिक्षा एवं मनोरंजन संस्थान (परवर्तीकाल में, रामकृष्ण मिशन लोक शिक्षा परिषद) के निर्देशक के रूप में सेवा कीं। वे माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक विद्यालय, नरेन्द्रपुर के प्रधानाध्यापक तथा विद्यामन्दिर महाविद्यालय सारदापीठ के प्राचार्य थे। उन्होंने सेवा प्रतिष्ठान में सह-सचिव के रूप में तीन वर्ष तक सेवा प्रदान की।

स्वामी प्रभानन्दजी अप्रैल, १९८३ में रामकृष्ण मिशन के ट्रस्टी एवं गवर्निंग बॉडी के सदस्य मनोनीत किये गये। वे १९८४ में रामकृष्ण मठ और मिशन के सह-सचिव चयनित हुए। इस पद पर उन्होंने ११ वर्ष तक सेवा की। २००७ -२०१२ तक महाराज ने रामकृष्ण मिशन मठ एवं मिशन के महासचिव पद को अलंकृत किया। उसके बाद वे रामकृष्ण संघ के उपाध्यक्ष बने।

पूजनीय महाराज ने अंग्रेजी एवं बांग्ला में अनेक पुस्तकों का लेखन किया, जिनमें श्रीरामकृष्ण की अन्त्य लीला (हिन्दी), ब्रह्मानन्द चरित (हिन्दी), सारदानन्द चरित (हिन्दी), दिव्य स्पर्श श्रीरामकृष्ण से पहली मुलाकातें (हिन्दी) एवं रामकृष्ण मिशन का इतिहास विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने संघ की पत्रिकाओं – अँग्रेजी एवं बांग्ला भाषा में अनेक विद्वतापूर्ण लेख लिखे। उन्होंने विभिन्न राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों में व्याख्यान दिये, जिनमें उनकी विद्वत्ता एवं महान चिन्तन की छाप परिलक्षित होती है।

बेलूड़ मठ स्थित रामकृष्ण संग्रह मन्दिर (म्यूजियम एवं आर्काइव) भावधारा के संस्थापना से सम्बन्धित लेखों एवं कलाकृतियों के संरक्षण हेतु महाराज द्वारा किये गये अथक प्रयासों की प्रतिमूर्ति है।

अपने अध्यात्मिक कार्यकाल में महाराज ने भारत, बांग्लादेश एवं नेपाल के अनेकों भक्तों को मन्त्र दीक्षा प्रदान की। महाराज ने विभिन्न अवसरों पर सिंगापुर, मलेशिया, इण्डोनेशिया, कनाडा, अमेरिका, यूरोप, रूस, फिजी, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, दक्षिण अमेरिका एवं दक्षिण अफ्रीका का भ्रमण किया तथा श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा देवी, स्वामी विवेकानन्द एवं वेदान्त के उपदेशों का प्रचार किया।

स्वामी प्रभानन्द जी महाराज की विद्वता, उसकी शैक्षणिक क्रिया-कलापों एवं अन्वेषण कार्यों में उनकी गहन रूचि सर्वविदित थी। वे अपनी दैनिक, दिनचर्या के प्रति विशेष सजग थे एवं सभी कार्यों को अत्यन्त गहनता से क्रियान्वित करते थे। पूज्यनीय महाराज अपनी तपस्यायुक्त संयमित जीवन, विद्वता एवं आदर्श के प्रति समर्पण के कारण सभी के आदरणीय थे। उनका देहावसान संघ की अपूर्णीय क्षति है।

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में विवेकानन्द जयन्ती समारोह

स्वामी विवेकानन्द जी की १५९वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर द्वारा किए गए विभिन्न कार्यक्रमों का संक्षिप्त विवरण

विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सत्संग भवन में प्रतिदिन सन्ध्या ६ बजे विभिन्न प्रकार की प्रतियोगिताएँ आयोजित की गयीं –

१५ जनवरी, २०२३ को अन्तर्महाविद्यालयीन विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। विषय था – ''स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में भारतीय नारी का आदर्श।'' इसमें गुरुकुल महिला महाविद्यालय, रायपुर की छात्रा कु. अदिति शुक्ला ने प्रथम, शा.नागार्जुन विज्ञान महाविद्यालय की छात्रा कु. श्रीप्रिया तिवारी द्वितीय और डॉ. राधाबाई कन्या महाविद्यालय, रायपुर की छात्रा कु. पुजाली पटले ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। कलिंगा विश्वविद्यालय, रायपुर की छात्रा कु. हुनेश्वरी सिन्हा ने और सेण्ट विन्सेण्ट पैलोटी महाविद्यालय, रायपुर की छात्रा कु. प्राची वर्मा ने सान्त्वना पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता रक्षा अध्ययनशाला, शा.नागार्जुन विज्ञान महाविद्यालय, रायपुर के विभागाध्यक्ष प्रो. गिरीशकान्त पाण्डेय जी ने की।

१६ जनवरी को अन्तर्महाविद्यालयीन तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता थी, जिसमें शासकीय नागार्जुन स्नातकोत्तर विज्ञान महाविद्यालय, रायपुर की कु. श्रीप्रिया तिवारी ने प्रथम, डी. के.एस. एग्रीकल्चर एण्ड रिसर्च स्टेशन, भाटापारा की कु. सिद्धि तिवारी और शा.ना.वि.म. की कु. डाली साहू ने तृतीय पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता मनोविज्ञान अध्ययनशाला, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर के विभागाध्यक्ष डॉ. बशीर हसन ने की।

१७ जनवरी को अन्तर्महाविद्यालयीन वाद-विवाद प्रतियोगिता थी, जिसका विषय था – ''इस सदन की राय में वर्तमान शिक्षा व्यवस्था मानवता की अपेक्षा अर्थकेन्द्रित अधिक है।'' शासकीय नागार्जुन स्नातकोत्तर विज्ञान महाविद्यालय, रायपुर की छात्रा कु. डाली साहू ने प्रथम, कु. श्रीप्रिया तिवारी ने द्वितीय और कु. सिद्धि तिवारी ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. शैलेश के. जाधव विभागाध्यक्ष, जैव विज्ञान प्रौद्योगिकी अध्ययनशाला र.शु.वि.वि. ने की।

१८ जनवरी को 'इस सदन की राय में राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान कानून की अपेक्षा जागरुक समाज से अधिक सम्भव है।' इस विषय पर अन्तर्विद्यालयीन वाद-विवाद प्रतियोगिता थी। इसमें विवेकानन्द विद्यापीठ, आदर्श आवासीय उ.मा. विद्यालय, कोटा, रायपुर के दीपेन्द्र बारले ने प्रथम, राजकुमार कॉलेज, रायपुर के सूरज रात्रे ने द्वितीय और जतन देवी डागा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, रायपुर की कुमारी वृद्धि बैद ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर के मनोविज्ञान अध्ययनशाला की विभागाध्यक्ष डॉ. मीताश्री मित्रा ने की।

१९ जनवरी को अन्तर्विद्यालयीन तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता थी। इसमें जतन देवी डागा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, रायपुर की कुमारी वृद्धि बैद ने प्रथम, राजकुमार कालेज, के आर्यांश जे. टेकाम ने द्वितीय और बी.पी.पुजारी विद्यालय, राजा तालाब, रायपुर की कु. भव्या सूर्या ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर के अर्थशास्त्र विभागाध्यक्ष डॉ. रवीन्द्र ब्रह्मे ने की।

१९ जनवरी को ही अन्तर्विद्यालयीन विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता का भी आयोजन था। विषय था – 'स्वामी

विवेकानन्द का एक श्रेष्ठ भारत का सपना।' इसमें विवेकानन्द विद्यापीठ, आदर्श आवासीय उ.मा. विद्यालय, कोटा, रायपुर के प्रदीप सायतोड़े ने प्रथम, श्री गुजराती उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, रायपुर की कु. गोल्डी हियाल ने द्वितीय और जतन देवी डा. उच्चतर मा. वि. रायपुर की कु. वृद्धि बैद ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. रवीन्द्र ब्रह्मे ने की।

२१ जनवरी को 'अन्तर्माध्यमिक शाला विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता' का विषय था – 'मातृभूमि के प्रेमी स्वामी विवेकानन्द।' इसमें पूलिस पब्लिक स्कूल की कु. उन्नति शर्मा ने प्रथम और सुकृति शर्मा ने द्वितीय और विवेकानन्द विद्यापीठ, रायपुर के सत्येन्द्र कुमार ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता पं.र.शु.विश्वविद्यालय की मनोविज्ञान अध्ययनशाला की डॉ. मीता झा ने की।

२२ जनवरी को 'अन्तर्माध्यमिक शाला वाद-विवाद प्रतियोगिता' थी। विषय था – 'इस सदन की राय में धनवान होने की अपेक्षा चरित्रवान होना अधिक हितकर है।' इसमें पुलिस प. स्कूल की कु. उन्नति शर्मा ने प्रथम, विवेकानन्द विद्यापीठ, रायपुर के विश्वजीत भार्गव ने द्वितीय और पुलिस प. स्कूल की कु. सुकृति शर्मा ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर के कम्प्यूटर अध्ययनशाला के विभागाध्यक्ष डॉ. संजय कुमार ने की।

२३ जनवरी को 'अन्तर्प्राथमिक पाठशाला पाठ-आवृत्ति प्रतियोगिता' थी। इसमें विवेकानन्द विद्यापीठ आदर्श आवासी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, कोटा, रायुपर के छात्र तनिष्क परते ने प्रथम और श्रीरामकृष्ण विद्यालय, रायपुर के कमलेश पटेल ने द्वितीय और कु. राधिका तिवारी ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. सुभाष चन्द्राकर, प्रा. राजनीतिशास्त्र, दुर्गा महाविद्यालय, रायपुर ने की। सभी प्रतियोगिता-सत्रों का आयोजन एवं संचालन स्वामी व्रजनाथानन्द जी ने किया।

राष्ट्रीय युवा दिवस मनाया गया

१२ जनवरी, २०२३ को रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के सत्संग भवन में राष्ट्रीय युवा दिवस मनाया गया, जिसमें ५ शिक्षण संस्थानों के लगभग ३०० छात्र-छात्राओं ने सोत्साह भाग लिया। आश्रम के छात्रों ने देशभक्ति गीत प्रस्तुत किये। सभा को रामकृष्ण विवेकानन्द विश्वविद्यालय, बेलूड़ मठ के कुलपति स्वामी सर्वोत्तमानन्द जी, दुर्गाकॉलेज के प्रोफेसर डॉ. सुभाष चन्द्राकर जी ने छात्र-छात्राओं को सम्बोधित किया। सभा की अध्यक्षता बस्तर विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति डॉ. शैलेन्द्र सिंह जी ने की। आश्रम के सचिव स्वामी अव्ययात्मानन्द जी ने स्वागत भाषण दिया। सभी बच्चों को स्वामी विवेकानन्द की पुस्तकें और अल्पाहार प्रदान किया गया।

विवेकानन्द जयन्ती उद्घाटन समारोह

विवेकानन्द आश्रम रायपुर में विवेकानन्द जयन्ती समारोह का उद्घाटन और पुरस्कार वितरण समारोह का आयोजन २५ जनवरी, २०२३ को सन्ध्या ६ बजे किया गया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि विवेकानन्द विद्यापीठ के सचिव डॉ. ओमप्रकाश वर्मा जी और स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने सभा को सम्बोधित किया। आश्रम के सचिव स्वामी अव्ययात्मानन्द जी ने सभा की अध्यक्षता की। विजेता छात्र-छात्राओं को पुरस्कार में स्वामी विवेकानन्द साहित्य, रुपये, प्रमाण पत्र और अल्पाहार दिया गया। मंच संचालन स्वामी देवभावानन्द जी तथा धन्यवाद ज्ञापन स्वामी व्रजनाथानन्द जी ने किया।

श्रीमद्भागवत प्रवचन आयोजित हुआ

२६ जनवरी, २०२३ से १ फरवरी तक प्रतिदिन सन्ध्या ७ से ९ बजे तक वृन्दावन से पधारे भागवत उपासक पण्डित श्री अखिलेश शास्त्रीजी के 'गोपियों के जीवन में ज्ञान, भक्ति और वैराग्य की प्रतिष्ठा' पर भक्तिपूर्ण मार्मिक और सारगर्भित प्रवचन हुए।

भक्त-सम्मेलन का आयोजन हुआ

५ फरवरी, २०२३ को आश्रम के सत्संग भवन में प्रात: ९ बजे से १ बजे तक भक्त-सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसमें १६५ भक्त सम्मिलित हुए। सम्मेलन में दीप-प्रज्वलन और अष्टोत्तरशत नामार्चना के बाद रामकृष्ण मिशन, उज्जैन के स्वामी राघवेन्द्रानन्द जी ने ध्यान कराया। भक्तों का स्वागत आश्रम के सचिव स्वामी अव्ययात्मानन्द जी ने किया। सम्मेलन में स्वामी देवभावानन्द, स्वामी प्रपत्त्यानन्द, स्वामी राघवेन्द्रानन्द ने विभिन्न विषयों पर व्याख्यान दिये। स्वामी विश्वदेवानन्द जी ने वचनामृत-पाठ किया। प्रश्नोत्तर सत्र में भक्तों के प्रश्नों के उत्तर संन्यासियों ने दिये। धन्यवाद ज्ञापन स्वामी व्रजनाथानन्द जी ने किया। सामूहिक भजन 'रामकृष्णशरणं' से सम्मेलन सम्पूर्ण हुआ।

(कार्यक्रमों के चित्र आवरण पृष्ठ २ पर देखें)